आचार्य चाणक्य

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,

पंचकूला-134112 (हरियाणा)

फोन : 0172-2567845

मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2017
प्रतियाँ :

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. +91-94683 40497**
मुद्रक :

भूमिका

मेरी प्रिय आत्माओ! चाणक्य शब्द कान में पड़ते ही मानस मुकुर पर एक ऐसाी मूर्ति प्रतिबिम्बित हो उठती है जिसका निर्माण मानो विधा, वैदग्ध दूरदर्शिता, राजनीति एवं सुदृढ़ निश्चय के पंच तत्वों से हुआ था। वे एक व्यक्ति होने पर भी अपने में एक पूरे युगपुरुष थे। उन्होंने अपनी बुद्धि व संकल्पशीलता के बल पर तात्कालिक मगध सम्राट घनानंद का नाश कर उसके स्थान पर एक साधारण बालक को स्वयं शिक्षित कर राज्य सिंहासन पर बिठाया था। विद्वानों के लक्षण से भरपूर चाणक्य का जब जन्म हुआ था तभी ज्योतिषियों ने पिता चणक से भविष्यवाणी करते हुए कहा था –

चणी! ऐसा बालक तो शताब्दियों पश्चात् किसी भाग्यशाली के घर उत्पन्न होता है। सुख तो इसके चारों ओर नर्तकियों की भाँति नाचेगा। वैभव इसके आगे-आगे सेवकों की भाँति बिछता हुआ जाएगा और महामात्य होकर भी यह युगपुरुष कहलायेगा। आर्यावर्त पर अपनी शासन व्यवस्था स्थापित करेगा। यह बालक अपनी उंगली के संकेत मात्र से विदेशी साम्राज्य की जड़ें हिला देगा। यही सम्राट घोषित करेगा और भारत गौरव बढ़ायेगा।

विभिन्न लेखकों द्वारा रचित आचार्य चाणक्य की जीवनियों का गंभीर अध्ययन एवं अनुशीलत करने के उपरांत आपकी सेवा में उनकी संक्षिप्त जीवनी प्रस्तुत कर रहा हूँ। लीजिए आप भी इस रूहानी गुलदस्ता रूपी आचार्य चाणक्य जी की संक्षिप्त जीवनी के फूलों को देखिये और झूम-झूम कर आनंद विभोर हो जाइए। प्रस्तुत पुस्तक को मैंने सच्ची लगन एवं कड़ी मेहनत के पश्चात् लिखा है। वस्तुतः समर्पण व राष्ट्रीय भावना के ये संस्कार नई पीढ़ी तक भी पहुँचे इसी

प्रेरणा से इस पुस्तक को लिखा गया है ।

प्रस्तुतः पुस्तक के लिखने में मुझे श्री नरेन्द्र आहूजा 'विवेक', रोशन लाल अग्रवाल जी, नरेश बंसल जी, जय किशन जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है । अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी । विशेषतः श्री नरेन्द्र आहूजा 'विवेक' जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है । मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता । मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों में से संदर्भ उद्धृत किये गये हैं ।

जिन अचिन्त्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका हूँ उसका भी कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ । मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है । परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ एवं अपूर्ण है अतः यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा ।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 28.9.2016

(धर्मपाल कपूर)
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135,
सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मो. : 0-9356301618

प्रस्तावना

श्री धर्मपाल कपूर जी देश के इतिहास के संबंध में अच्छा ज्ञान रखते हैं, इसका उनकी ''आचार्य चाणक्य'' पुस्तक से आभास होता है। श्री कपूर जी ने आचार्य चाणक्य के विषय बहुत सी आश्चर्य चकित करने वाली घटनाओं का उल्लेख इस पुस्तक में किया है।

चाणक्य जन्म से ही बड़ी कुशाग्र बुद्धि के थे। चाणक्य के पिता चणक ब्राह्मण थे, उनका पालन पोषण छोटे से गांव कुसुमपुर में हुआ। उनके पिता कर्मकाण्ड से मुश्किल से अपनी जीविका चला रहे थे। महाराज नन्द का मंत्री शकटार चणक का मुंह बोला मित्र था। चणक शकटार के पास गया, शकटार ने पूछा मित्र कैसे आना हुआ। चणक बोले मेरा पुत्र चाणक्य अब बड़ा हो गया है उसकी शिक्षा का प्रबन्ध करने में असमर्थ हूँ। शकटार ने नन्द से कहा महाराज आपकी कृपा हो जाए तो राजकोष से यदि छात्रवृत्ति दे दी जाये तो उसके पुत्र को तक्षशिला की विद्यापीठ में शिक्षा दिलाई जा सकती है। नन्द ने कहा महामन्त्री हो आपकी राय का विरोध नहीं करते। नन्द को कोषाध्यक्ष ने कहा, महाराज राजकोष दिन पर दिन क्षीण होता जा रहा है। नन्द ने कहा महामन्त्री के कथनानुसार राजकोष में से मुद्राएं देने का प्रबन्ध कर दो।

चणक को नन्द देवता कुबेर के समान महादानी लग रहे थे। तक्षशिला की विद्यापीठ में पहुँच तो गए पर विद्यालय में भोजन, निवास, वस्त्र, पुस्तक आदि की व्यवस्था कैसे हो, परन्तु चाणक्य हताश न हुए। आचार्य, गुरुमाताओं की सेवा में लग गये। आचार्य ने चाणक्य की सेवा से खुश होकर उसे अपने घर रखा और विद्यालय में पढ़ाया। चाणक्य की इतनी कुशाग्र बुद्धि थी कि 14 वर्ष के बाद वैदिक ज्ञान से लेकर राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र एवं अस्त्र-शास्त्र की प्रकाण्ड पंडित प्राप्त कर ली।

चाणक्य विद्या प्राप्त कर अपने निवास पहुँचे तो उसे अपने

माता-पिता वहाँ नहीं मिले । किसी ने पूछने पर बताया कि उन्हें राजा नन्द ने निर्वासित कर दिया और शक्टार को बन्दी बना लिया । महामंत्री शकटार और सेनापति मौर्य दोनों ही जनता का हित चाहते थे और महाराज नन्द की विलासी प्रवृत्ति के विरुद्ध थे । महाराज नन्द का सारा कोष विलासिता में खर्च किया जा रहा था । जनता त्रस्त थी । चणक से नन्द का अत्याचार देखा न गया और उसने नन्द के विरुद्ध नगर में उसके अत्याचार का ढ़िंढोरा पीटना आरम्भ कर दिया । इस पर नन्द ने चणक को दी जाने वाली छात्रवृत्ति और अन्य सुविधायें छीन कर देश निकाला दे दिया । चाणक्य को यह मालूम न था ।

चाणक्य ने प्रतिज्ञा की कि जब तक नन्द के साम्राज्य को उखाड़ कर फेंक न दूँ तब तक मैं अपनी चोटी को नहीं बाधूंगा । चाणक्य ने नन्द के साम्राज्य को उखाड़ फेंक देने का संकल्प तो ले लिया परन्तु इसके लिए उन्हें एक कुशल प्रशासक की खोज थी । इसके लिए उन्होंने चन्द्रगुप्त के नाटकीय संवाद को सुना । अरे ! यह इतना छोटा बालक और इतनी बड़ी बातें । चाणक्य की आँखों से खुशी के आँसू निकल पड़े । चाणक्य के हर्ष की सीमा न रही । चाणक्य ने किस प्रकार से नन्द का विनाश करने के लिये चन्द्रगुप्त को तैयार किया और उसे पाटलिपुत्र का सम्राट् बनाया । यह पूर्ण वृतान्त आपको आचार्य चाणक्य पुस्तक में पढ़ने को मिलेगा कि किस प्रकार से बुद्धिमत्ता से चाणक्य ने अपने पिता का बदला लिया और जनता पर हो रहे अत्याचारों का खात्मा किया ।

चाणक्य ने विधिवत् अपने हाथ से चन्द्रगुप्त मौर्य को सम्राट् पद पर अभिषिक्त करने सन्तोषपूर्वक अपनी चोटी बांधी और कहा—कोई साधन न होने पर भी मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई, राष्ट्र विदेशी प्रभाव से मुक्त हुआ और देश के एक छत्र साम्राज्य की स्थापना हुई ।

चन्द्रगुप्त को चाणक्य ने नसीहत दी कि चन्द्रगुप्त ! जब तक तुम में न्याय, सत्य, आत्मविश्वास, साहस एवं उद्योग के गुण सुरक्षित रहेंगे तुम और तुम्हारी सन्तानें इस पद पर बनी रहेंगी । और यदि तुम और

तुम्हारी सन्तानें इन गुणों से विरत रही तो पतन का उत्तरदायित्व देशकाल अथवा परिस्थितियों पर नहीं, तुम पर और तुम्हारी सन्तानों पर होगा।

आचार्य चाणक्य के जीवन से हमें एकनिष्ठ, कर्त्तव्यनिष्ठ, आत्मविश्वास और परम प्रतिज्ञानिष्ठ की शिक्षा लेनी चाहिये। वह कितने सरल एवं साधारण व्यक्तित्व के धनी थे, उनका रहन-सहन, खान-पान, आहार-विहार ऐसा रहा जैसा तपस्वियों का होता हैं उनमें हिमालय जैसी ऋषि परम्परा, कितनी विलक्षण बुद्धि, कितने कठोर प्रतिज्ञ, कितने दूरदर्शी। सारी राजकीय सुविधाओं को छोड़ एक साधारण झोंपड़ी में निवास, कितना सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व था उनका। हमें उनके चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिये। इसको कहते हैं सादा जीवन, उच्च विचार।

मैं पुनः इस बात को दोहराता हूँ कि ''आचार्य चाणक्य'' पुस्तक में श्री धर्मपाल कपूर जी ने बहुत से ऐसे तथ्य उद्धृत किये हैं जिनका अन्य पुस्तकों में अभाव पाया जाता है। श्री कपूर जी का यह अति सराहनीय कार्य है। देश के लोगों को अपने ऋषि, मुनि, आचार्य आदि के जीवनचरित्र उनके कर्त्तव्य पालन आदि के सम्बन्ध में ज्ञान होना अति आवश्यक है। उनके जीवन की घटनाओं से बहुत कुछ सीखने को मिलता है। ईश्वर श्री धर्मपाल कपूर जी को लम्बी आयु प्रदान करे। मैं उनके इस कार्य की दिल से प्रशंसा करता हूँ, वे सदा परोपकारी कार्यों में लगे रहें।

लालचन्द चौहान
591/12, पंचकूला
(हरियाणा)-134112
फोन : 0172-25563079
मो. : 0-9814881501

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	बाल्यकाल	1
2.	चाणक्य की प्रतिज्ञा	13
3.	चंद्रगुप्त की खोज	24
4.	तक्षशिला में चाणक्य	33
5.	मगध में वसंत उत्सव	39
6.	सिन्धु के उस पार सिकंदर	47
7.	सिकंदर पर्ववेश्वर का युद्ध	57
8.	सिकन्दर की वापसी	70
9.	नंद राज्य की समाप्ति	78
10.	यवनों का पुनः आक्रमण	92
11.	शिखाबंधन	101
12.	साहित्यसृजन	105

आचार्य चाणक्य

1. बाल्यकाल

कुसुमपुर ! हां, यह वही कुसुमपुर है, कितना छोटा-सा गांव था । यहीं मेरा बचपन पला । इसी गांव को दुष्ट नंद ने सब कुछ तहस-नहस कर दिया । आज भरी-पूरी बस्ती होकर भी यातना के बादलों से घिरी एक उजाड़ बस्ती लग रही है । यहाँ कितनी चिताएं जली हैं । कितनों को अग्नि भी प्राप्त नहीं हुई । कितने चील-कौओं के भोजन बन गए, कोई हिसाब नहीं । चलते-चलते चाणक्य एक वट वृक्ष के नीचे आकर खड़े हो गए । सांझ ढल चुकी थीं । यकायक चाणक्य अट्टहास कर उठे । उनके सामने अतीत का वह पन्ना फरफराकर खुल गया ।

छोटा -सा गांव कुसुमपुर ! कुल जमा दस-बीस घरों की बस्ती । थोड़े से खेत । झोंपड़ी नुमा मकान । झोंपड़ी भी क्या घास-फूस को मोटी लकड़ियों पर इस प्रकार डाल रखा था मानो नीचे सूरज की गर्मी से बचने के लिए छाया भर हो जाए । नंद के सैनिकों की भाँति ही धूप भी हठपूर्वक फूस के पंख चीरती हुई घर में घुस आती थी, और इसी तरह बेरोक-टोक बरसता था पानी । भीतर तक का सब कुछ भीग जाता था । ऊपर से नंद के सैनिकों का दबदबा । कौन जाने कब धूप या बादल की तरह नंद के सैनिक फूस में छेदकर झोंपड़ी में घुस जाएं और किसी के घर में खिली कोई भी चटकती गुलाब की कली टहनी उखाड़कर ले जाएं और भेंट चढ़ा दें अपने देवताओं को । वर्षा और धूप के देवता इन्द्र और सूर्य एक बार को इस अत्याचार भरे भेंट स्वीकार न करें लेकिन मनुष्यों की भेंट से अट्टहास करने वाला यह दानवीय वृत्तियों वाला राक्षस नंद, इसे तो नवयुवियों के गर्म लहू को पीने का चसका पड़ चुका था ।

चाणक्य का पिता चणक ब्राह्मण था । संतोष की मूर्ति, नितांत धर्मनिष्ठ । स्वयं की आवश्यकता के लिए किसी के आगे हाथ नहीं पसारा । कर्मकांड से अपनी जीविका बड़ी मुश्किल से चला रहा था और उसी समय चाणक्य का जन्म हुआ । एक पत्थर मानो दरक गया

और उसकी झिर्रियों में से एक हलकी-सी प्रकाश की किरण पूरे झोंपड़े को प्रकाशित कर गई। पुत्र को पाकर चणी और उसकी पत्नी दोनों ही फूले नहीं समाए। चणी और उसकी पत्नी दोनों ही सुन्दर थे। उस समय राज्य के अत्याचारों की कालिमा, क्रूर सैनिकों का आतंक और भय काले बादलों की तरह राज्य के भविष्य रूपी आकाश में छाए हुए थे। शायद इस कालिमा का ही प्रभाव हुआ कि चाणक्य शरीर से स्वस्थ होने पर भी घनश्याम वर्ण का उत्पन्न हुआ।

माँ के लिए तो पुत्र घर में प्रकाश करने वाला होता है फिर चाहे वह काला ही क्यों न हो। इस खुशी के माहौल में ही जब चणी ने अपने पुत्र की भविष्य रेखाओं को जानने के लिए साधु-संन्यासियों और ज्योतिषियों को बुलाया तो वह ग़रीब ब्राह्मण मानो आकाश से उतरता हुआ जमीन पर आ गया। चाणक्य के मुंह में बचपन से ही दांत निकले हुए थे और जब वह हंसता था तो उसके यही दांत मानो उसके शरीर की कालिमा को बादलों की तरह चीरकर शुभ्र चांदनी के समान प्रकाश फैला देते थे।

ज्योतिषियों और साधु-संन्यासियों ने जब देखा कि इस बालक के मुख में दांत बचपन से ही विद्यमान हैं तो उनकी दृष्टि उसके हाथ की रेखाओं से हटकर दांतों पर आ टिकी। उसके मस्तक का फैलाव, भृकुटियों का बांकपन, सांस लेते समय नाक के नथुनों का फूलना और इस सब पर अघोषित तनाव सभी कुछ मानो भविष्य की मूर्ति को गढ़ रहे थे और वह बालक इन सबसे बेखबर अपनी मां की गोदी में बैठा हुआ निहार रहा था आश्चर्य से, अपने भविष्य द्रष्टाओं की ओर; जैसे वह कहता हो छोटे-छोटे हाथ फेंकता हुआ कि मेरा भविष्य मेरे हाथ में नहीं मेरे मस्तक में उठने वाले विचारों में छिपा हुआ है।

ज्योतिषियों के मन में यह सारा दृश्य उथल-पुथल मचाए हुए था। वह जानते थे कि यह गरीब ब्राह्मण, जिसने श्रद्धा भक्ति से उनका आतिथ्य किया है, इसे क्या मालूम कि इसकी 'कल' कैसी विचित्र दशा

होगी। फिर भी ज्योतिषयों ने चणी के बार-बार पूछने पर उसे बताया—

हे ब्राह्मण! तुम्हारे बालक की जन्म-कुंडली और हाथ की रेखाएं जो बता रही हैं, उनके आधार पर यह बालक बड़ा होकर एक बहुत बड़े राज्य का स्वामी होगा। इसके मुख में जो जन्म के दांत निकले हैं ऐसा बालक तो शताब्दियों बाद किसी भाग्यशाली के घर पैदा होता है। सुख इसके चारों तरफ नर्तकियों की तरह नर्तन करेगा। वैभव इसके आगे-आगे चाकरों की तरह बिछता हुआ जाएगा और राजा होकर भी यह युगपुरुष कहलाएगा चणी।

चणी का मन चिन्ता से कांप उठा। उसे ज्योतिषियों के कथन पर क्षण-भर के लिए भी यह प्रसन्नता न हुई कि उसका पुत्र बड़ा होकर राजा बनेगा। उसे तो लगने लगा कि कहीं इस भविष्यवाणी का सुराग नंद को लग गया तो वह इन्हें जीते जी मार डालेगा। पता नहीं कल का सूरज कैसा अभिशप्त होगा। ज्योतिषियों को विदा करके चणी तुरन्त झोंपड़े में गया और बालक को माँ से छीनकर अपने पास लेते हुए उसने पास के एक पत्थर से बच्चे के वे दोनों दांत तोड़कर गिरा दिये। वटवृक्ष के नीचे बैठा हुआ चाणक्य अब इस अतीत के पन्ने को पढ़ रहा था तो अचानक उसका हाथ अपने मुखमण्डल पर गया। सभी दांत अपनी-अपनी जगह सुरक्षित थे लेकिन दांत जो, पिता ने पुत्र-रक्षा के स्नेहभाव में तोड़ दिए थे, वह स्थान तो अब भी रिक्त है, अब भी वहाँ से वायु बिना किसी रुकावट के आती-जाती है। और चाणक्य के मुंह से अचानक निकल गया—वाह पिता!

चाणक्य न तो कोई धनवान थे और न उनका कोई सम्बन्ध किसी राजनीतिक सूत्रधार से था। वे केवल एक साधारणतम व्यक्ति—एक गरीब ब्राह्मण थे। बाल्यकाल में चाणक्य में कोई

विशेषता न थीं। विशेषता थी तो केवल इतनी कि वे अपनी माँ के भक्त, विद्या व्यसनी तथा संतोषी व्यक्ति थे। वे जो कुछ खाने-पहनने को पा जाते उसी में सन्तोष रखकर विद्याध्ययन करते हुए अपनी ममतामयी माता की सेवा किया करते थे। उनकी मातृभक्ति, विद्या व्यसन तथा दृढ़ संकल्प की अनेक कथायें प्रसिद्ध हैं। एक बार, जिस समय वे केवल किशोर ही थे, अपनी माँ को पुस्तक सुनाते हँस पड़े। माता ने उनकी मुँह की तरफ देखा और रो पड़ी। चाणक्य का मां के इस अहेतुक एवं असामयिक रुदन पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा– ''माँ तू इस प्रकार मेरे मुँह की ओर देखकर रो क्यों पड़ी?''

माँ ने उत्तर दिया कि ''तू बड़ा होकर बड़ा भारी राजा बनेगा और तब अपनी ग़रीब माँ को भूल जायेगा।''

चाणक्य ने पुनः विस्मय से पूछा– ''पर तुझे यह कैसे पता चला कि मैं राजा बनूंगा।''

''तेरे आगे के दो दांतों में राजा होने के लक्षण है उन्हें ही देखकर मैंने समझ लिया कि तू राजा बनेगा।'' माँ ने चाणक्य को बतलाया। चाणक्य ने माँ की बात सुनी और बाहर जाकर पत्थर से अपने वे दोनों दाँत तोड़ डाले फिर अन्दर जाकर माँ से हँसते हुए बोले ''ले अब तू निश्चिंत हो जा, मैंने राज-लक्षणों वाले दोनों दांत तोड़कर फेंक दिये। अब न मैं राजा बनूंगा और न तुझे छोड़ कर जाऊँगा।'' यह था चाणक्य की ज्वलन्त मातृभूमि का प्रमाण।

महाराज नंद का मंत्री शकटार चणी का मुंहबोला मित्र था और वह अपने कौशल से नंद का मंत्री बन गया था। चणी को नंद के राज्य में पुरोहिती दे दी गई थी।

चणी शकटार के पास गया।

''कहो मित्र! कैसे आना हुआ?'' शकटार ने पूछा।

''मेरा पुत्र चाणक्य अब बड़ा हो गया है और मैं उसकी शिक्षा का प्रबंध करने में असमर्थ हूँ। यदि तुम्हारी कृपा हो जाए और

महाराज इसके विद्याध्ययन का प्रबंध राजकोष से कर दें तो मैं उनका उपकार कभी नहीं भूलूंगा।'' अगले दिन दरबार में आकर चणी ने महाराज से निवेदन किया। ब्राह्मण के निवेदन को सुनकर नंद ने कहा—''क्यों महामंत्री! तुमने इस ब्राह्मण को पहले हमारे दरबार में प्रस्तुत करके पुरोहिती दिलवाई और अब तुम इसके पुत्र को तक्षशिला भेजना चाहते हो और राजकोष से छात्रवृत्ति दिलवाना चाहते हो?''

''हां महाराज! यदि आपकी कृपा हो जाए।'' शकटार ने कहा।

''तुम जानते हो, राजकोष दिन पर दिन क्षीण होता जा रहा है।''

''महाराज्! ब्राह्मण को दान करना धन का उपयोग होता है और कहते हैं कि ब्राह्मण को दिया गया धन ब्याज सहित प्रभु कृपा से राजकोष में अन्य स्रोतों से लौट आता है। इस छात्रवृत्ति से राजकोष में कोई कमी नहीं आएगी।''

''ठीक है, यदि तुम ऐसा समझते हो तो तुम हमारे महामंत्री हो, तुम्हारी राय का हम विरोध नहीं करते। जितना उचित समझो, इस ब्राह्मण को दे दो। कोषाधिकारी सुन लें, महामंत्री के कथनानुसार इस ब्राह्मण को राजकोष से मुद्राएं देने का प्रबन्ध कर दिया जाए और इसके लिए हमें बार-बार कष्ट न दिया जाए, जब तक बालक पढ़ता है, इसका पूरा प्रबंध राजकोष करेगा।''

चणी के लिए तो इस समय महाराज नंद देवता के समान या कहें कुबेर के समान महादानी लग रहे थे। चाणक्य तक्षशिला की विद्यापीठ में पहुँच तो गये किन्तु अब विद्यालय, भोजन, निवास, वस्त्र, पुस्तक आदि की व्यवस्था किस प्रकार हो? घर सें सैकड़ों कोस परदेश में कोई साधारण किशोर हताश होने के सिवाय क्या करता। किन्तु चाणक्य हताश होने नहीं विद्वान् होने के लिए गये थे। निदान सेवा का सहारा

लेकर मार्ग निकाल ही तो लिया। उन्होंने अनिमंत्रित आचार्यों, अध्यापकों एवं उपाध्यायों की सेवा करनी शुरू कर दी। वे गुरु माताओं के लिये जंगल से लकड़ी ला देते, कुएं से पानी भर देते, बाज़ार से सौदा ला देते। आचार्यों के हाथ से पुस्तकें लेकर उनके पीछे-पीछे विद्यालयों तक पहुँचा आते। अध्यापकों को कक्षा में पानी पिला आते, थके हुए उपाध्यायों के सिर में मालिश कर देते।

इस प्रकार चाणक्य ने बिना कहे और बिना कोई परिचय दिये शिक्षकों को अपनी सेवा से इतनी सुविधा पहुँचाई कि उनका ध्यान आकर्षित हुए बिना न रह सका। कुछ समय तो गुरुजन तथा गुरु मातायें चाणक्य को विद्यालय की किसी शाखा का साधारण विद्यार्थी समझकर कोई विशेष ध्यान न देते रहे किन्तु जब उनकी सेवाओं का क्रम इतना बढ़ गया तो वे सोचने लगे कि यह विद्यार्थी जब हर समय सेवा ही में लगा रहता है तब अपना पाठ किस समय पढ़ता होगा।

चाणक्य ने सजल कंठ से उत्तर दिया ''भगवन! मैं विद्यालय का कोई छात्र नहीं हूँ। मगध से यहाँ विद्या प्राप्त करने की आशा से आया था। किन्तु कोई अन्य साधन न होने से गुरुजनों की सेवा को ही अपना साधन बना लिया है। पेट गुरु माताओं की कृपा से भर जाता है, किन्तु आत्मा की भूख तो आप गुरुजनों की कृपा से ही .....।'' चाणक्य आगे कुछ न कह सके उनका कंठ रुँध गया और नेत्र बहने लगे। आचार्य का हृदय गद्‌गद् हो गया और उन्होंने उसे छाती से लगाकर कहा–''वत्स! तुम्हारी इच्छा की पूर्ति को विधाता भी नहीं रोक सकता। जिसके आचरण में इतना सच्चा सेवा भाव और लक्ष्य के प्रति इतनी गहरी निष्ठा हो उसके लिये संसार में कौन पराया है, कौन-सा मार्ग अवरुद्ध है और कौन-से साधन दुर्लभ हैं? आज से तू मेरा पुत्र है। घर रहेगा और विद्यालय में पढ़ेगा। इस प्रकार लगनशील चाणक्य ने सेवा के बल पर भाग्य के अवरुद्ध कपाटों को धक्का देकर खोल दिया।

14 वर्ष बाद पश्चात् वैदिक ज्ञान से लेकर राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र एवं अस्त्र-शास्त्र का प्रकाण्ड पांडित्य प्राप्त करने के बाद लगभग 26 वर्ष के तरुण चाणक्य ने अपने महान् विद्या मंदिर की पावन धूल माथे पर चढ़ाकर और गुरुजनों से आज्ञा लेकर तक्षशिला से विदा ली—इसलिए कि अब वे मगध जाकर अपनी जन्मभूमि में विद्या का प्रचार करेंगे और महाराज नन्द के शासन में सुधार करवाने का प्रयत्न करेंगे जिसकी उसको उस समय परमावश्यकता थी।

तक्षशिला से आकर चाणक्य ने पाटलिपुत्र में एक साधारण विद्यालय की स्थापना की, जिसमें वे विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा देते थे। अपनी जीविका की व्यवस्था उन्होंने पिता की उस खेती से कर ली थी जिसे वे बटाई पर उठाया करते थे। चाणक्य की योग्यता ने शीघ्र ही उन्हें प्रकाश में लाकर लोकप्रिय बना दिया। जनता में सम्पर्क स्थापित हो जाने पर वे उसके दुःख सुख में सांझीदार होने लगे। चाणक्य ने अपने प्रवचनों एवं प्रचार से शीघ्र ही जनमानस में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता ला दी जिससे स्थान-स्थान पर महाराजा नन्द की आलोचना होने लगी और जनता का असंतोष एक आन्दोलन का रूप लेने लगा।

वट वृक्ष के नीचे बैठा हुआ चाणक्य विचारमग्न था, सोच रहा था यह कैसा हवा का झोंका है जो अतीत के पन्ने फड़फड़ाकर खोलता जा रहा है। उसे याद आने लगा— मानो कल की बात थी, उसके पिता महाराज नंद के यहाँ से कितने प्रसन्न लौटे थे, मुझे तक्षशिला भेजने का आश्वासन पाकर। प्रातःकाल मैंने यह सूचना सबसे पहले सुवासिनी को दी थी। महामंत्री शकटार की यह सबसे छोटी कन्या थी, मुझसे तीन वर्ष छोटी।

चाणक्य सोच रहे थे और अतीत बार-बार अपने में उलझा रहा था। चाणक्य का घर का नाम विष्णुगुप्त था और उसके पिता और

माता दोनों ही उसे विष्णु कह कर पुकारते थे। आज दोनों में से कोई भी तो नहीं है। शायद उन्हीं के साथ चला गया विष्णु गुप्त का संबोधन, रह गया केवल चाणक्य—अकेला। यहाँ कौन बताएगा उसे कहाँ है उसकी झोंपड़ी जहाँ उसने अपना बचपन बिताया था?

चाणक्य के पीछे आने वाली परछाई मानो ठहर गई थी और अचानक एक आवाज आई, ''कौन हो तुम? इधर रात्रि में घरों के आस-पास क्या देख रहे हो?''

''तुमने जवाब नहीं दिया? किसे खोज रहे हो तुम?''

''मैं अपना बचपन खोज रहा हूँ। क्या तुम बता सकते हो कि यहीं पास ही किसी झोंपड़ी में एक ब्राह्मण चणी रहा करते थे, वे कहाँ होंगे?''

''तुम क्यों पूछ रहे हो उनको? वह तो यहाँ से कुछ वर्ष पहले निर्वासित कर दिए गए थे।''

''लेकिन क्यों?''

''यह मत पूछो, यह एक बड़ी पीड़ादायक घटना है, एक दुःखद प्रसंग है।''

''पर ऐसा क्या हुआ?''

''बहुत साल पहले की बात है – महाराज ने अपने महामंत्री शकटार को बंदी बना लिया था।''

''ऐं! वे तो उनके बड़े विश्वासपात्र थे''

''हां, लेकिन जब राजा से राज्य बड़ा हो जाता है तो विश्वास राज्य पर ठहर जाता है, राजा पर नहीं।''

''तुम तो बड़े गुणी महात्मा हो। क्या तुम मुझे खोलकर बताओगे?''

''इसमें बताने को रहा ही क्या है? महामंत्री शकटार और सेनापति मौर्य दोनों ही जनता का हित चाहते थे और महाराज नंद की विलासी प्रवृत्ति के विरुद्ध थे। लेकिन तुम यह सब क्यों पूछ रहे हो।''

''मैं जुड़ा हुआ हूँ उनसे। तुम बताओ।''

''महाराज नंद के कोष का सारा पैसा विलासिता में प्रयोग किया जा रहा था। जनता त्रस्त थी और जब राजा प्रजा का ध्यान छोड़ दे तो यह दशा तो होगी ही। मंत्री ने इसका विरोध किया, महाराज ने सेनापति के हाथों उसे बंदी बनवा लिया। सेनापति ने यह कर्म महाराज की आज्ञा से कर तो दिया लेकिन उसका मन इसे स्वीकार नहीं कर सका तो उसने स्वयं ही ग्लानिवश यह पद छोड़ दिया। महाराज ने उसके इस व्यवहार को उसकी बगावत समझा और उसे भी बंदीगृह में डाल दिया।''

''लेकिन ब्राह्मण चणी का निष्कासन इनसे कहाँ संबंधित रहा?''

''वह ब्राह्मण आत्मसम्मानी था। जब उसने सुना कि महाराज ने उसके प्रिय मित्र और राज्यनिष्ठ महामंत्री शकटार को बंदीगृह में डाल दिया है और उसे वध के लिए भूखे परिवार सहित यातना सहने के लिए सुनसान काल कोठरी में भूमिगत कर दिया है तो ब्राह्मण से यह सहन नहीं हुआ और जब सेनापति के प्रति भी उसने यही अत्याचार देखा तो वह अपने क्रोध पर काबू न रख सका। वह ब्राह्मण बड़ा हठी था। उसने महाराज नंद के विरुद्ध नगर में उनके अत्याचार का ढिंढोरा पीटना शुरु कर दिया, मानो वह पागल हो गया हो।

''वह चिल्लाता फिरा—यह नंद हत्यारा है, यह मगध की प्रजा को खा जाएगा। नागरिको, सावधान! इस विलासी राजा को इसके कर्म का दंड मिलना ही चाहिए।

''फिर क्या था। जब महाराज नंद ने यह सुना तो उन्होंने सबसे पहले तो उसकी राजकोष से मिलने वाली छात्रवृत्ति बंद करा दी और उसे नगर से निकाला दे दिया।''

''फिर क्या हुआ?''

''फिर उसे किसी ने नहीं देखा। महाराज ने अपने सिपाहियों द्वारा उसे पकड़कर बुलवाया भी था। उसे समझाया भी था कि तुम्हारा मित्र शकटार केवल बंदी है, उसका वध नहीं किया गया।

''लेकिन वह ब्राह्मण तो धर्म के अतिरिक्त कोई और व्यवहार जानता ही नहीं था, इसलिए उसने भरे दरबार में महाराज नंद को पापी और अनाचारी कहते हुए ललकारना प्रारम्भ कर दिया। फिर तो नंद ने क्रोध में आकर उसका दिया सारा वैभव लौटा लिया और उसे मगध से बाहर कर दिया।

वहाँ सामने जो कुछ बांस गढे हुए देख रहे हो, जिनका फूस भूमि पर वर्षा और हवा के कारण खाद बन गया है, वह उस ब्राह्मण की ही तो झोंपड़ी है।''

''अच्छा एक बात बताओ।''

''क्या अब भी कुछ पूछने को रह गया है? इतना समझ लो कि नंद अब ब्राह्मणों के विरुद्ध हो गया है और वह बुद्ध बन चुका है। उसके राज्य में अब कोई ब्राह्मण राज्याश्रय नहीं पा सकता।''

मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। मुझे तो यह बताओ, शकटार का परिवार कहाँ रहता है?''

''तुम कैसे व्यक्ति हो जो! तुम्हें नंद के राज्य में खड़े होकर उसके विरुद्ध इतने प्रश्न करने में तनिक भी भय नहीं लग रहा? अब मैं तुम्हें उन सबकी समाधि बताऊँ कहाँ बनी है?''

''नाराज मत होओ, मैं तो केवल यह जानना चाहता था कि महामंत्री शकटार की एक कन्या सुवासिनी थी। क्या बता सकते हो कि वह जीवित है या नहीं?''

यह सुनकर वह बोला, ''क्या करोगे पूछकर, बौद्ध विहार चली गई थी लेकिन जब वहाँ भी न रह सकी तो नृत्यांगना बन गई।''

और यह कहकर वह परछाई, जो एक अपरिचित व्यक्ति के रूप में चाणक्य से संवाद कर रही थी, उसी अंधकार में लौट गई। यह मेरा दुर्भाग्य ही तो है कि आज मैं तक्षशिला से अध्ययन पूरा करके लौटकर माता-पिता से न मिल सका। एकमात्र पुत्र से उन्हें क्या सुख मिला। जो उन्होंने मेरी उंगलियां पकड़कर मुझे घर के आंगन और दहलीज तक चलना सिखाया, उनका वही पुत्र तक्षशिला से यहाँ तक कितनी लंबी यात्रा करके आया है, यह तो वे जान ही नहीं पाए। कैसा अभिशाप है यह। एक राजा की दुष्प्रवृत्तियों ने एक साथ तीन-तीन परिवारों का सर्वनाश कर दिया। यही वह कुसुमपुर है? नहीं, यह एक कुसुमपुर नहीं हो सकता। क्या प्रजा राजा पर इसी दिन के लिए विश्वास लाती है? क्या वह उसके हर संकेत पर इसी दशा में आने के लिए उसके सामने बिछ-बिछ जाती है।

नहीं, यह अत्याचार रोकना होगा। अब यह नहीं सहा जाएगा। मैं लेकिन करूँगा क्या? कैसे रोक पाऊँगा इसे अकेला? एक स्थापित शासक को उलटकर प्रजा के हित की व्यवस्था को पुनः स्थापित करने के लिए मैं तो अकेला हूँ। खैर जो कुछ भी है, मैं एक बार तो महाराज से मिलूंगा। यह ब्रह्मचारी चाणक्य इतनी जल्दी हार नहीं मानेगा।

मन में एक विचारक ने कुलबुलाते हुए चाणक्य से कहा– इस पर विचार करने से क्या होगा? निर्णय करने से पहले जब तक महाराज नंद का विचार नहीं मालूम पड़ता तब तक क्या कहा जा सकता है। उस गड्ढे के अतिरिक्त चाणक्य को झोंपड़ी के भूगोल का कुछ भी पता न चल सका। यह देख चाणक्य की आँखों में आँसू आ गये। सुवासिनी और पिता के बीच की स्मृतियों में यह पत्थर एक दीवार बन गया और मानो दोनों दिशाओं से अलग उसे एक तीसरा मार्ग साफ-साफ दिखलाई देने लगा। जो नष्ट हो गया, वह अब किसी भी दशा में लौटाया नहीं जा सकता लेकिन जो नष्ट होने के कगार पर खड़ा है, उसे तो रोका जा सकता है। यह सोचते हुए चाणक्य को मानो उसकी दिशा मिल गई थी। वह अब वहाँ से लौटकर वहीं आ गया जहाँ वह ठहरा हुआ था, एक अपरिचित सराय में। उसने निश्चय किया कि कल वह महाराज नंद से मुलाक़ात करेगा।

2. चाणक्य की प्रतिज्ञा

प्रातःकाल होते ही चाणक्य ने पाटलिपुत्र जाने का विचार किया। वह सोच नहीं पा रहा था कि एक मदांध राजा अपने भोग-विलास की लिप्सा में क्यों समूचे राष्ट्र की आहूति दे रहा है? क्या उसने निश्चय कर लिया है कि वह अमर है? दोपहर चढ़ आई थी, जब चाणक्य पाटलिपुत्र पहुँचा। राजनगरी में भव्य महलों को देखकर वह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि इसके समीपवर्ती भूखंड और गांव एक उजाड़ श्मशान भूमि से दिखलाई पड़ रहे हैं। समूचे उत्तर भारत में पाटलिपुत्र राज्य का अपना नाम है लेकिन उसकी प्रजा!!! शायद इसके बारे में दूर बैठकर जो कोई अनुमान लगाएगा, वह यहाँ इस नगरी में आकर अपने अनुमान को गलत पाएगा।

नगर की शोभा अत्यंत रमणीय थी क्योंकि वहाँ राजमहल के भीतरी प्रकोष्ठ में सैनिक भी रमणियां ही थीं और परिचारिकाएं भी रमणियां थीं। नंद ने महिलाओं के जीवन-स्तर को कितना ऊँचा उठा दिया था। जब चाणक्य राजभवन में पहुँचे तो आश्चर्यचकित रह गए। जो सोच कर वे आए थे, वह प्रश्न पीछे छूट गया था क्योंकि यहाँ तो साक्षात वैभव-विलास का तांडव नृत्य हो रहा था। मार्ग में उन्हें कुछ ब्राह्मण मिले। एक ने जिज्ञासावश पूछा, ''तुम कौन हो भाई? माथे पर गोरोचन का तिलक देखकर ही लगता है कि तुम ब्राह्मण हो। तुम यहाँ नए जान पड़ते हो। तुम इतने चिन्तित क्यों हो?''

चाणक्य कोई उत्तर देते इससे पहले ही एक ने कहा, ''क्या धन की चिन्ता से दुःखी हो ब्राह्मण?''

''बेकार चिन्ता कर रहे हो। आज रविवार है और आज के दिन महाराज कभी किसी ब्राह्मण को खाली नहीं लौटाते। महाराज नंद सूर्य के उपासक हैं।''

''कितने कष्ट की बात है, आप लोग ब्राह्मण हैं लेकिन चापलूस भी हैं। एक कायर राजा की झूठी प्रशंसा करते हुए आपको शर्म नहीं आती? महाराज नंद कितने दानी हैं, यह तो मैं अभी कुसुमपुर और पाटलिपुत्र के बीच जो गांव पड़े हैं, उनकी शोभा को देखकर अनुमान लगा सकता हूँ। जमीनें सूखी पड़ी हैं और घर खाली पड़े हैं, कहीं किसी के यहाँ दीपक नहीं जलता और इधर-उधर जो भूला-भटका जनसमूह टिका हुआ है, उनके यहाँ से उनकी बहू-बेटियां गायब हैं।''

फिर कुछ सोचकर चाणक्य ने कहा, ''आप महाराज को दानी बता रहे हैं, वे सूर्य के उपासक हैं, लेकिन क्या आप बता सकते हैं कि आपके यहाँ आपके घर की स्त्रियों की इज़्ज़त सुरक्षित है।''

क्रोध में भरकर चाणक्य ने कहा, ''आप समझते हैं कि मैं तक्षशिला से पाटलिपुत्र धन की इच्छा लेकर आया हूँ? कभी सोचा है कि आपने यहाँ की उत्पन्न सन्तानें असमय क्यों मर जाती हैं? उनका बचपन सीधा वृद्ध क्यों हो जाता है? और जब वे दिन-रात श्रम करके अपनी जीविका कमाते हैं तो उन्हें श्रम के विनिमय में मिलता क्या है? केवल अपमान और प्रताड़ना। उनका अपना क्या है? क्या वे स्वयं को जीवित कह सकते हैं? व्यक्ति को मगध में रहने का कितना बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है। क्या यही राज्य-व्यवस्था थी महापद्मानंद की, जिनका वंशज यह नंद स्वच्छंद, अनाचारी और अनुदार हो गया। मेरे किसी प्रश्न का उत्तर दे सकेंगे आप?''

चाणक्य उनकी ओर देखता इससे पहले ही वे लोग धीरे-धीरे खिसक गए। एक वयोवृद्ध ने, जो उन सबसे पीछे आ रहा था, चाणक्य से कहा, ''ब्राह्मण! तुम किस उद्देश्य से आए हो यह तो मैं नहीं जानता लेकिन अगर कोई संकल्प लेकर आए हो तो इतना कहूँगा कि नंद से कोई अपेक्षा मत करना। यह दुष्ट और दुराचारी है। तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा ब्राह्मण।''

''लेकिन हे आर्यश्रेष्ठ! मैं कुछ मांगने नहीं आया, मैं तो केवल यह जानने आया हूँ कि महामंत्री शकटार और सेनापति मौर्य का क्या हुआ? ये लोग कहाँ गए? मैंने सुना है कि महाराज ने इन्हें बंदी बना लिया है....''

''लेकिन यह तुम क्यों पूछ रहे हो? तुम कौन हो? अपना परिचय दोगे?''

''आपने पूछा है तो अवश्य बताऊँगा। मैं कुसुमपुर के एक विपन्न ब्राह्मण चणी का पुत्र हूँ। मेरा नाम मेरे पिता ने चाणक्य रखा था और पंडितों ने विष्णुगुप्त। आप मुझे किसी भी नाम से पुकार सकते हैं। मैंने महाराज नंद के राज्यकोष से ही वृत्ति पाकर तक्षशिला में विद्याध्ययन किया और वहीं मैं आज भी आचार्य के रूप में कार्य कर रहा हूँ।

''शिक्षा ग्रहण करने के बाद मेरी यह अभिलाषा थी कि मैं एक बार अपने माता-पिता से मिल आऊँ। बहुत समय से मुझे यहाँ का कोई समाचार नहीं मिला था, इसलिए जब मैं कुसुमपुर पहुँचा तो मैंने वहाँ एक अच्छे गांव को मरघट में बदले हुए पाया।''

''वत्स! मैं चणी को जानता हूँ। उसे मैंने बहुत समझाया था। लेकिन उस पर देशभक्ति का भूत सवार था। वह जन-सुधार करना चाहता था और इसलिए अपने महाराज के विरुद्ध आवाज़ उठाई। क्रोधित हो महाराज ने उसे मगध से निकाल दिया।''

''यह पूरी कहानी मैं सुन चुका हूँ ब्राह्मण देव। मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि महाराज नंद ने शकटार और सेनापति मौर्य को किस अपराध में बंदी बना लिया।''

''मैं समझता हूँ और मैंने तुम्हारे चेहरे को पढ़ लिया था कि तुम आवश्यक कोई संकल्प करके आए हो। प्रभु करे तुम उदय होते सूर्य

के समान चमको । आज रविवार है, तुम स्वयं महाराज से मिल लो ।''

नंद के राजदरबार से बाहर आने वालों की भीड़ लगी हुई थी । हर व्यक्ति महाराज से मिलने के लिए उत्सुक था, पहरेदारों से अनुनय-विनय कर रहा था और पहरेदार किसी को झिड़ककार, किसी पर जोर आजमाते हुए उन्हें केवल एक भीड़ की तरह देख रहे थे । कितना सुन्दर कक्ष था । बड़े-बड़े विशल स्तंभ, छत की चित्रकारी और बौद्ध स्तूपों की सौंदर्य छवि देखकर चाणक्य को लगा कि यह राजा सुंदरता व कला का प्रेमी है । अभी चाणक्य यह सब देख ही रहे थे कि उन्हें अपने पास से गुलाब की एक तेज गंध-सी आई । अपने भव्य सौंदर्य से वातावरण को गुंजित करती एक चपल सुंदरी भीतर राजभवन में प्रविष्ट हुई ।

अभी कुछ क्षण पहले जो सुंदरी गई थी वह फिर लौटी ।

चाणक्य ने उसे रोककर कहा, ''देवी ! क्या महाराज नंद से मिलने का अवसर मिलेगा ?''

''इसके लिए तुम्हें कुछ देर ठहरना पड़ेगा ब्राह्मण ! महाराज अभी अपने निजी कक्ष में हैं ।''

''यह तो उनके प्रजा से मिलने का समय है ।''

''वे महाराज हैं अपने समय के स्वयं निर्धारणकर्ता हैं । तुम ठहरो ।''

यह कहते हुए वह सुंदरी फिर भीतरी कक्ष में चली गई । चाणक्य खड़े-खड़े सोच रहे थे कि यह मगध सम्राट का राजदरबार है या किसी नगरी की मधुशाला । यहाँ चारों ओर उन्माद है । सब लोग या तो स्त्री स्वभाव में ढल चुके हैं या फिर साक्षात स्वयं स्त्रियां ही हैं । गिने-चुने

पुरुष ही इधर-उधर दिखाई पड़ रहे हैं । विलासिता का ऐसा तांडव तो कहीं नहीं देखा । धर्म का पालन करने वाला राजा इतना व्यसनी है ! क्या होगा मगध का ? जन-चेतना का कितना अभाव है यहाँ ! कहीं कोई जागरुकता नहीं, न अस्तित्व के लिए, न राष्ट्र के लिए, न धर्म के लिए और न संस्कृति के लिए । क्या सोचकर चला था चाणक्य तक्षशिला से और क्या देख रहा है यहाँ ! चारों तरफ केवल दंभ मात्र है । मगध जैसे शक्तिशाली राष्ट्र का अपमान कोई इस तरह ऐसे कब तक कर सकता है ।

भीतर से आवाज आती है, ''लौट जाओ चाणक्य !''

''कैसे लौट जाऊँ ? राष्ट्रभूमि माँ होती है । तो क्या माँ के वस्त्रों को इस प्रकार एक राक्षस के हाथों नोचे जाने को अनदेखा कर दूँ ?''

तभी उसके कानों में भनक पड़ी–

''राजाधिराज मगध सम्राट् महाराज नंद पधार रहे हैं ।''

और कुछ ही देर में वह नंद के सम्मुख था ।

''आओ ब्राह्मण ! तुम गुरुकुल की शिक्षा पूरी करके मगध लौटे हो । मगध तुम्हारा स्वागत करता है और मैं समझता हूँ कि तुम मगध के सम्मान की रक्षा करोगे ।''

''मैं....''

''मैं जानता हूँ परिचारिका ने मुझे बता दिया है, तुम हमारे राज्याश्रित ब्राह्मण चणी के पुत्र हो विष्णुगुप्त ।''

''मेरा नाम चाणक्य भी है ।''

''जानता हूँ ।''

''महाराज ! मैं तक्षशिला से अपनी शिक्षा पूरी करके यहाँ लौटा हूँ। मगध का मस्तक ऊँचा करने। उसी गुरुकुल में मुझे आचार्यत्व मिला है लेकिन मैं देख रहा हूँ कि यहाँ का रंग-ढंग काफी बदल गया है।''

''तुम कहना क्या चाहते हो?''

''यही कि बौद्ध धर्म की शिक्षा मानव व्यवहार के लिए संपूर्ण नहीं है, भले ही संघ व्यवहार में रहने वाले उसे उपयुक्त मानें परन्तु शस्त्र शिक्षा की अवमानना करके हम आने वाले संकट से नहीं निपट सकते।''

''तुम किस संकट की बात कर रहे हो?''

''जो आपको नहीं दिखाई दे रहा।''

''तुम्हें दिखाई दे रहा है?''

''हाँ, मैं देख रहा हूँ। यवनों की सेना पर्वतमाला तक पहुँच गई है। गांधार नरेश उसके आने के संकेत से चिंतित है। अकेला पर्वतेश्वर कहाँ तक रोक पाएगा उन्हें। यदि पर्वतेश्वर की पराजय हुई और यवन सेना, बढ़ती हुई मगध तक आ गई तो समूचा आर्यावर्त म्लेछों के अधिकार में आ जाएगा। तब आप नशे में अपने पहरियों को पुकारते रह जाएंगे। मगध का गौरव धूल-धूसरित होकर रह जाएगा।''

चाणक्य सोचने लगा, उससे कहीं भूल हुई है। वह यह सब कहने तो नहीं आया है।

नंद ने कहा, ''तुम क्या कर सकते हो?''

''महाराज ! आपने जो ब्राह्मण नाश का विचार बनाया है,

राष्ट्र-हित में उसका परित्याग कर दीजिए, क्योंकि राष्ट्र का शुभचिंतन केवल ब्राह्मण ही कर सकते हैं । इन बौद्ध-भिक्षुओं की जमीन को हटाकर शुद्ध, तपस्वी ब्राह्मणों के आश्रम स्थापित कराइए और युवा पीढ़ी को शास्त्र विद्या से शिक्षित कराइए ।''

''ब्राह्मण ! तुम बहुत वाचाल हो रहे हो ।''

''और तुम भोग-विलास में लिप्त ।''

''मेरे राज्य में रहकर, मेरी वृत्ति से पलकर बड़े होकर आज तुम मुझे मर्यादाहीन भाषा से संबोधित कर रहे हो ।''

''बस कर मूर्ख राजा ! तू समझता है तू भाग्य का निर्माता है । जिसके पग संभलकर नहीं चलते वह किसी राष्ट्र को क्या चला सकता है ।''

''अरे कोई है ? बंदी बना लो इसको ।''

''तुम मुझे बंदी बनाओगे ? सम्राट नंद ! मैं ब्राह्मण हूँ, भिक्षा मेरी वृत्ति है, मैं तो केवल राज्य की दुर्गति को देखकर तुमसे यह कहने आया था कि देश पर यवनों का आक्रमण होने ही वाला है और यदि इसके लिए सशक्त सैन्यबल का आश्रय न लिया गया तो यवनों की सेना पूरे आर्यावर्त को अपने सैन्यबल घोड़ों की टापों के नीचे रौंद देगी । उस समय ये बौद्ध भिक्षुक कायर सिद्ध होंगे ।''

''चुप रहो चणी के पुत्र ! तुम एक विद्रोही की संतान हो ।'' फिर नंद ने प्रहरियों की ओर देखते हुए कहा, ''देखते क्या है ? शिखा पकड़कर इस ब्राह्मण को दरबार से बाहर कर दो । हमारे ही दरबार में हमारा अपमान कर रहा है ।''

प्रतिहारों ने सैनिकों की सहायता से ब्राह्मण चाणक्य को पकड़ लिया और एक सैनिक ने ब्राह्मण की चोटी पकड़ कर खींची । अपनी

लाठी, कमण्डल तथा उपवस्त्र संभालते हुए चाणक्य गिरते हुए संभल कर एक बार फिर खड़ा हो गया। उसका शरीर कांप रहा था मानो हृदय में भयानक तूफान मचल रहा हो। तुमने इस भरे राजदरबार में मेरी शिखा खोली है। मैं प्रतिज्ञा लेकर कहता हूँ दुष्ट नंद! यह शिखा तब तक खुली रहेगी, जब तक तेरे वंश का समूल नाश नहीं हो जाता। अब मैं शिखा तेरे वंश का नाश करके ही बाधूंगा।''

दरबार में उपस्थित सभी लोग चाणक्य की यह घोषणा सुनकर स्तब्ध रह गए लेकिन दुष्ट, चाटुकार अट्हास करने लगे। क्रोधित नंद अब दरबार में एक पल भी न ठहर सका और अपने भीतरी कक्ष में चला गया। उसके साथ उसकी रमणीय स्त्रियां चशक के प्याले लेकर प्रस्तुत हो गईं। नंद विलास में डूब गया। उसे चाणक्य द्वारा दिखाये गए आगामी संकट का लेशमात्र भी भय नहीं था। अपनी ही धुन में चाणक्य सोच रहा था– अब समय आ गया है, तुम्हारी धर्मांधता से संचालित यह राजनीति की आंधी अब तुमसे नहीं रुक पाएगी। मानो स्वयं में उत्तेजित होकर चाणक्य ने कहा–

रे नंद! तेरे वंश का अब समूल नाश होगा, नियति को तू नहीं टाल पाएगा। समय आ गया है, शूद्र राज्य सिंहासन से हटाए जाएं और किसी क्षत्रिय को इस पर बैठाया जाए।

अट्टहास करते हुए चाणक्य ने कहा, रे दासी पुत्र! तुझसे मगध और अपेक्षा भी क्या कर सकता था?''

अकस्मात् चाणक्य का हाथ अपनी शिखा पर जाता है।''

क्रोध में उत्तेजित होकर उसके मुंह से यही आवाज निकली है–

तूने ब्राह्मण की शिखा खींची है दुष्टराज! ब्राह्मण की शिखा! तू शूद्र के अन्न से पला हुआ कुत्ता है। प्रहरी! तेरा राज अब कुछ ही दिनों का मेहमान है। अब देख, सर्पिणी के समान खुली हुई यह शिखा किस प्रकार तेरे वंश को डंसती है?

और उसे शाप देते हुए चाणक्य राजमहल से लौट आये। उसके अन्तरात्मा में अब केवल अपनी ही वाणी गूंज रही थी—''यदि मैं सच्चा ब्राह्मण हूँ तो हे राजा नंद ! मैं तेरे राज्य को नष्ट करके ही चैन लूंगा।''

वह यही सोचता-विचारता हुआ चलता जा रहा था। लेकिन कहां जा रहा था, यह तो उसे भी मालूम नहीं था। अचानक एक नुकीली कुश ने चाणक्य के पैर में गड़कर उसकी गति को रोक दिया। तलुवे में चुभे कुश के कांटे से लहू निकल आया था। अब उसे चारों ओर कुश ही कुश दिखाई देने लगे।

चाणक्य के हृदय में अब एक दूसरी आँधी चल पड़ी। यह शस्य-श्यामला धरती जो हरे-भरे खेतों से लहलहाने की क्षमता रखती है, इसमें कुश पैदा हो रहे हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि नंद वंश से पहले मुझे कुश के वंश को नष्ट करना होगा ताकि वे फिर कभी न पनप सके। उसने एक गृहिणी से एक घड़ा मट्ठा मांगा और घड़ा भरकर मट्ठा लिए वह उसी जगह वापस लौटा जहाँ उसे कुश का कांटा चुभा था। घड़े को एक किनारे पर रखकर चाणक्य ने अपने मजबूत हाथों से कुश के समूह को उखाड़ कर फेंकना शुरू कर दिया और पश्चात् में उन गड्ढों में मट्ठा डाल दिया। वहीं पास में चाणक्य के इस कार्य को जब एक वृद्ध ने देखा तो वह जोर से हँस पड़ा। अब चाणक्य की आँखें क्रोध से लाल हो उठीं। वह उस ब्राह्मण को घूरते हुए बोला—''तुम ही हो जिसने मुझे नंद के राजमहल में जाने की प्रेरणा दी थी।''

''हाँ, मैं ही हूँ। क्यों, धन नहीं मिला?'' और यह कहते हुए वह ब्राह्मण जोर से हँस पड़ा।

चाणक्य उसकी यह अकारण हँसी देखकर और स्वयं को अपमानित समझकर उत्तेजित हो गया। क्रोध में कांपते हुए उसने कहा, ''तुम हँस रहे हो! मेरे अपमान पर हँस रहे हो। जानते नहीं मेरा नाम चाणक्य है।''

''तुम्हें भी जानता हूँ और तुम्हारे पिता को भी जानता हूँ। मैं तुमसे तब भी नहीं कहता अगर अपनी आँखों से तुम्हें कुश की जड़ में मट्ठा डालते न देखता। कुश की जड़ में मट्ठा वही डालता है जो मन में कर्म का संकल्प लेता है और मुझे विश्वास है कि जो व्यक्ति कांटों की, कुश की जड़ में मट्ठा डालकर उसे समूल नष्ट करता है, ताकि इस धरती पर कभी कुश न उग सके वही व्यक्ति संकल्प ले तो अवश्य ही—नंद जैसे दुराचारी राजा के वंश का भी नाश कर सकता है। अपने क्रोध रूप मट्ठे को दुराचारी की जड़ों में डालकर उसे सिंहासनच्युत कर सकता है।''

''तुम्हें भ्रम हुआ है वत्स। मैं तो यह जानता हूँ कि तुम जब यहाँ से गए थे तो तुम्हारी शिखा बंधी हुई थी और अब खुली हुई है। क्या इस बीच कोई परिवर्तन हुआ है?''

ब्राह्मण की बात में जिज्ञासा भाव देखकर चाणक्य ने नंद के राजदरबार की सारी घटना सुनाते हुए कहा, ''मैंने प्रतिज्ञा की है कि जब तक नंद वंश का समूल नाश नहीं कर दूंगा तब तक शिखा नहीं बांधूंगा।''

''प्रभु तुम्हारा संकल्प पूरा करें चाणक्य!'' और यह कहते हुए एक बार फिर खिलाखिलाता हुआ वह ब्राह्मण अंधेरे में विलीन हो गया। चाणक्य के मन में अब यही भाव बार-बार उठ रहा था कि नंद

का विनाश किस प्रकार हो, कैसे बचाएगा वह आर्यावर्त को, कैसे सुरक्षित रख पाएगा नारी का सम्मान कि वे वीर पुत्र की जननी भी हैं। अब चाणक्य को चैन भी नहीं था। नंद का किस तरह विनाश हो, यही उसकी चिंता का विषय था और वह चला जा रहा था, अब भी लक्ष्य प्राप्ति के लिए चला जा रहा था। नंद एक राजा था और चाणक्य एक ग़रीब ब्राह्मण। जब चाणक्य नंद की अपार शक्ति की ओर दृष्टि दौड़ाता था तो उसका मन दुःख और संशय से भर जाता था। ज्योतिषियों की भविष्यवाणी याद आते ही चाणक्य के चेहरे पर आशा की किरण दौड़ गई और वह हर्ष मिश्रित भाव से स्वयं ही गुदगुदा उठा।

"इसका अर्थ यह हुआ कि मैं नंद के वंश का नाश करने में सफल हो सकता हूँ और मगध को एक विशाल आर्यावर्त राज्य में बदलकर एक ऐसे व्यक्ति को सत्ता प्रदान कर सकता हूँ जो भारत की परंपरा और मर्यादा की रक्षा करते हुए प्रजा के हित में राज्य संचालन करे। सोचते-सोचते चाणक्य की दृष्टि अपने निजी अपमान से ऊपर उठकर देश रक्षा और देश कल्याण पर टिक गई। चाणक्य को तो यहां, कुछ दिन ठहर कर पिता से मिलकर शीघ्र ही तक्षशिला लौटना था। यहाँ राज्य की स्थिति इस संकट की दशा में होगी इसका तो उसे अनुमान भी नहीं था। अब उसने निश्चय किया कि उसे कुछ न कुछ तो करना ही होगा। यही सोचते हुए उसने तक्षशिला जाने का कार्यक्रम स्थगित कर दिया। अब तो उसे पहले एक सुपात्र नायक एवं वीर युवक की खोज थी।

3. चंद्रगुप्त की खोज

चाणक्य मन ही मन यह सोचते हुए जा रहे थे कि निश्चय ही एक ना एक दिन यह अंधकार छटेगा, यह दुर्दशा और अधिक सहन नहीं होगी। कोई न कोई उपाय तो करना ही होगा। क्या राष्ट्रीय भावना और मनु के आदर्श यूं ही व्यक्ति अहंकार के तले दबकर नष्ट हो जाएंगे? क्या संस्कृति और धर्म की शिक्षा देने वाला भारत म्लेच्छों का दास हो जाएगा? नहीं यह नहीं होगा। रोकना होगा इस अग्नि को प्रज्वलित होने से रोकना होगा अन्यथा इसमें सारे राष्ट्र का अस्तित्व सदा-सदा के लिए नष्ट हो जाएगा। इन्हीं विचारों में डूबते-उतराते चाणक्य घर-जंगल खाक छानते हुए हिमालय के समीप पिपली वन नाम के गांव में पहुँचे। गांव क्या था, दस-बीस घरों का एक जुड़ाव था। जहाँ चाणक्य खड़े थे सारा गांव वहीं से देखा जा सकता था। चाणक्य को संतोष था कि चलो इतनी दूर चलकर आने पर एक गांव तो ऐसा मिला यहाँ कुछ उत्साही युवक राज्य की कुत्सित प्रवृत्ति से दूर उन्मुक्तता में खुले मन से एक-दूसरे के साथ बतिया रहे हैं।

बालको का शोर सुनकर चाणक्य वहाँ खड़े न रह सके और धीरे-धीरे उस वृक्ष के पास पहुँच गये जहाँ कई बालक उपस्थित थे। ये बालक आपस में राजा और प्रजा का खेल खेल रहे थे। सामने बने एक ऊँचे ढेर पर बैठा हुआ बालक राजा की भूमिका में अकड़कर बैठा हुआ था और उसके पास घेरा डाले दूसरे बालकों में कोई उसका मंत्री था और कोई सेनापति और कुछ बालक सैनिक बने हुए सजग खड़े थे। बालकों का नाटक चल रहा था। यह पूरा दृश्य एक राज-दरबार का-सा था, जहाँ राजा की आज्ञा लेकर सैनिक अपराधियों को उपस्थित कर रहे थे। महामंत्री उनके अपराध बता रहे थे और सेनापति अपने सैनिकों की सहायता से उन्हें बंदी बना रहे थे।

चाणक्य आश्चर्य से खेल देख रहे थे कि कितनी दबंगता से यह बालक प्रत्येक अपराधी के अपराध को सुनकर कुछ देर सोचता था, महामंत्री से पूरा विवरण प्राप्त करता था और उसके बाद अपना निर्णय सुनाता था। इस राजा बने बालक का फैसला साधारण नहीं था। न अपराधियों के अपराध ही साधारण थे। यह बात दूसरी है कि ये लोग नाटक कर रहे थे लेकिन चाणक्य को लगा कि मानो वे एक क्षण-भर के लिए वास्तविक दरबार में खड़े हों। उन्होंने अनुभव किया कि यदि ऐसा बालक युवा होकर अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए राजसिंहासन पर आरूढ़ हो तो निश्चय ही अपने विवेक से यह मगध जैसे विशाल फैलाव वाले राज्य की सत्ता संभाल सकता है। चाणक्य ने इस बालक के मस्तिष्क पर दृष्टि डाली। चाणक्य को थोड़ा ज्ञान ज्योतिष का भी था। यहाँ अपने उसी ज्ञान के भरोसे चाणक्य ने देखा कि वह जो बालक राजा बना बैठा है, इसमें वे सभी गुण विद्यमान हैं जो एक राजा और कुशल प्रशासक में होते हैं या होने चाहिए और ऐसा ही बालक भारतवर्ष का सम्राट बन सकता है। चाणक्य के मन में भी नाटक को थोड़ा और बढ़ाने की बात जागी। वह हाथ जोड़ता हुआ महाराज बने उस बालक के आगे आकर कहने लगा–

''महाराज की जय हो! महाराज की जय हो!!''

''तुम कौन हो?'' राजा ने कहा।

''मैं एक ग़रीब ब्राह्मण हूँ महाराज। मेरा नाम चाणक्य है।''

''क्या चाहते हो?''

''बड़े दुःख से जीवन बिता रहा हूँ। क्या आप कृपा करके मुझे कुछ दान में दे सकते हैं?''

उस किशोर आयु के राजा ने पहले चाणक्य की ओर देखा फिर कुछ सोचा और उसी मुद्रा में मानो निर्णय का भाव बनाकर कहा, ''ये जो सामने गौएं चरते हुए देख रहे हो, जाओ मैं तुम्हें यह दान में देता

हूँ। जितनी इच्छा हो, गाएं अपने साथ ले जाओ।''

''परन्तु महाराज! ये गायें तो दूसरों की हैं। महाराज! गाएं चुराने के दोष में पाप का भागी और बन जाऊँगा।''

यह सुनकर तो बालक राजा की भौं तन गई। वह क्रोध में भरकर उसी राजसी मुद्रा में बोला–''इस गांव में किसका सामर्थ्य है जो महाराज चंद्रगुप्त मौर्य के आदेश की अवहेलना कर सके?''

चाणक्य ने जब सुना–चन्द्रगुप्त मौर्य, तो उसका माथा झन्ना उठा। उसके मस्तिष्क में मौर्य शब्द गूंजने लगा।

देखते ही देखते उस राजा ने खड़े होकर तलवार निकाल ली और कहा–''यह मेरी तलवार तुम्हारी रक्षा करेगी ब्राह्मण। तुम शायद नहीं जानते, मेरे पिता कहा करते थे–जिस राज्य में ब्राह्मणों का सम्मान नहीं हो अथवा कोई ब्राह्मण राज्य से बिना भेंट लिए खाली लौट जाए, समझो उस राज्य के अस्त का समय समीप है।''

''अरे! यह इतना छोटा सा बालक और इतनी बड़ी-बड़ी बातें।'' चाणक्य की आँखों से खुशी के आँसू लुढ़क पड़े। वह मन ही मन सोचने लगा–जिसकी खोज में वह दूर-दूर भटका, आज उसे वह रत्न मिल गया। चाणक्य के हर्ष की सीमा न रही।

चाणक्य को इस प्रकार आश्चर्यचकित देखकर बालक चंद्रगुप्त ने कहा–''क्यों चुप हो गये ब्राह्मण चाणक्य? क्या मेरे कथन में तुम्हें कोई असत्यता लग रही है?''

अब चाणक्य ने कहा–''नहीं वत्स! मुझे तुम्हारे कथन में लेशमात्र भी मिथ्या का अनुभव नहीं लगा। तुम्हारी वीरता देखकर मैं आश्चर्य में अवश्य पड़ गया था क्योंकि पाटलिपुत्र से मैं निराश लौटा हूँ।''

''क्यों? क्या वहाँ के राजा ने तुम्हें दण्ड नहीं दिया?''

''वह राजा नंद थोड़े ही है, वह तो राजा दंड है। उसी ने तो मेरे पिता को दंड दिया था।''

फिर उत्साह से भरकर बालक ने कहा–''जानते हो ब्राह्मण, मेरे पिता.....''

''ठहर जा, तुझे मैं बताती हूँ?'' एक नारी स्वर उभरा ।

''माँ, मैं इन्हें बता रहा था.....''

''चुप कर मेरे लाल ।'' माँ ने उस बालक को अपने अंक में छिपा लिया ।

''तुम इसकी बात पुरी होने दो देवी ! इसे रोको मत ।''

''यह मेरा एकमात्र जीवन का सहारा है । यह मूर्ख है तो क्या मैं माँ होकर इसे मूर्खता करने दूँ ।''

वह स्त्री कुछ बोलती, इससे पहले ही चाणक्य ने कहा–''ठहरो, पहले मैं तुम्हें अपना परिचय देता हूँ । चाणक्य उस महिला को दुष्ट नंद के अमुक कुकर्मों का समस्त वृत्तांत बताने लगे ।

चंद्रगुप्त की मां ने जब चाणक्य के मुंह से यह सब सुना तो वह हक्की-बक्की रह गई और आपे से बाहर होती हुई कहने लगी–

''कौन हो तुम ? अपना परिचय दो ।''

चाणक्य ने मुस्कराते हुए कहा, ''पहले इस बालक की बात पूरी होने दो देवी ।''

''नहीं, पहले तुम अपना परिचय दो फिर इसके बाद मैं इसकी बात पूरी करूँगी ।''

''देवी ! मैं उसी दुर्भाग्यशाली लेकिन हठी और आत्माभिमानी पिता का पुत्र हूँ जिसे राजा ने मगध से निष्कासित कर दिया था । हां, मैं चणी पुत्र हूँ । तुम मुझे विष्णुगुप्त भी कह सकती हो ।''

एक अप्रत्याशित प्रसन्नता मन पर झलकाते हुए उसने कहा–''विष्णुगुप्त ! आओ मेरे साथ । आओ वत्स चन्द्रगुप्त, तुम भी आओ ।''

वह स्त्री उनको अपने घर ले आई । अतिथि सत्कार के पश्चात् चंद्रगुप्त की माँ ने उसे बताया—''चंद्रगुप्त ठीक कह रहा है विष्णुगुप्त । यही सेनापति मौर्य का अभागा पुत्र है, जिसे मैं अपने पति के बंदी होने के बाद उनकी इस एकमात्र निशानी को बड़ी कठिनाई से संभालते हुए यहाँ ले आई ।''

''यह तो बालक है, अभी अबोध है, इसलिए केवल अपना मन बहलाने के लिए गांव के बच्चों के साथ खेल लेता है । अपने पिता की यह तलवार भी इसने आज ही निकाली है ।''

अब चाणक्य को विश्वास हो गया कि निश्चय ही यह बालक क्षत्रिय कुल में जन्मा है । इसकी रगों में एक वीर पिता का रक्त दौड़ रहा है । चाणक्य ने उस बालक को अपने समीप बुलाते हुए कहा, ''यदि तुम चाहो तो सचमुच राजा बन सकते हो ।''

राजा शब्द सुनकर चंद्रगुप्त के चेहरे पर रक्त दौड़ गया, मानो वह पल भर में ही बालक से युवा हो गया । उस वीर बालक ने अपने हाथ में तलवार ली और चाणक्य के चरण छूते हुए कहा, ''आज से आप मेरे गुरु हैं । आप जो आदेश देंगे मैं सदा ही उसका पालन करूँगा और आपके संकल्प को पूरा करने का यत्न करूँगा ।''

''मैं जानता हूँ, जो व्यक्ति पाटलिपुत्र से जीवित लौटता है, वह यही संकल्प लेकर लौटता है कि वह नंद के वंश को समाप्त कर दे और मगध को एक जनप्रिय राज्य के रूप में प्रतिष्ठा दे ।''

चाणक्य यह सुनकर हैरान रह गया ।

''हे वत्स ! जब मैं पाटलिपुत्र से चला था तो दुष्ट नंद ने मेरी अवमानना करते हुए अपने प्रतिहारी से मेरी शिखा को पकड़कर खिंचवाया था, मेरी लाठी और कमण्डल गिर गए थे, मैं भूमि पर लोट गया था । तभी मैंने उठकर यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपनी यह शिखा तभी बांधूंगा जब नंद वंश का समूल नाश कर दूंगा ।''

चंद्रगुप्त ने उत्साह से चाणक्य की ओर देखते हुए कहा—''तो मैं

भी प्रतिज्ञा करता हूँ गुरुदेव! कि मैं सदा आपके आदेश का पालन करते हुए आपकी आकांक्षा के अनुकूल अपनी पात्रता सिद्ध करूँगा। नीति आपकी होगी, कौशल मेरा। दिशा आप देंगे, आगे मैं बढ़ूंगा। संकेत आप करेंगे। पालन मैं करूँगा।''

अब चाणक्य को इससे अधिक और क्या चाहिए था? वह बोला–''यदि ऐसा है वत्स! तो मैं भी घोषणा करता हूँ कि तुम राजा ही नहीं, राजाओं के भी राजा बनोगे और एक दिन समूचा आर्यावर्त तुम्हारे नेतृत्व में सुख की सांस लेगा।''

चंद्रगुप्त की माता इस सारे कथन को और वार्तालाप को मूक दृष्टि से देखती-सुनती रही। वह मानती थी कि उसका बालक अपने पिता के समान ही बड़ा निर्भीक, चपल और साहसी है। चाणक्य के प्रति चंद्रगुप्त की माँ को यह विश्वास हो गया कि यह कोई नंद का सैनिक नहीं बल्कि यह भी हमारी तरह नंद के कोप का भाजन बना हुआ एक पितृविहीन ब्राह्मण है तो उसकी आँखें छलक उठीं।

''हे देवी! तुमने तो इस बालक के रूप में भारत का भविष्य पैदा किया है। तुम इसे मेरी दृष्टि से देखने का प्रयास करो। क्या तुम इसको उचित शिक्षा के लिए मेरे साथ तक्षशिला भेज सकती हो?''

''तुम इसे दूर ले जाने का परामर्श क्यों दे रहे हो, यही तो एक मेरा सहारा है।''

''मैंने इसे तक्षशिला जाने के लिए कहा है, राजा नंद के पास नहीं।''

''तक्षशिला में जाने के लिए और शिक्षा पाने के लिए इसे वृत्ति कहाँ से मिलेगी ब्राह्मण महाराज?''

''मैं नंद की बात ही नहीं कह रहा, तुम्हें शायद ज्ञात नहीं है, मैं स्वयं तक्षशिला का आचार्य हूँ और इसके अध्ययन का उत्तरदायित्व मैं लेता हूँ। तुम इसे मेरे साथ तक्षशिला भेजोगी, जहाँ यह मेरे पास शस्त्र और शास्त्र की विद्या ग्रहण करेगा।

''मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ देवी ! मेरे हृदय में इसको देखकर एक हिलोर पैदा हो गई है । यदि यह उच्च शिक्षा प्राप्त करके और शस्त्र विद्या में प्रवीण होकर दक्षता प्राप्त कर लेता है तो एक दिन निश्चय ही यह अपने पिता के अपमान का न केवल बदला लेगा बल्कि उनकी आकांक्षा के राज्य की स्थापना करने में, उनके स्वप्न को पूरा करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा । तब इतिहास इस पर गौरव करेगा देवी !''

अभी वे सब लोग इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि उन्हें यह समाचार मिला कि एक राज्य से किसी ने महाराज नंद की राजसभा में एक ऐसा पिंजरा भेजा है, जिसमें एक शेर बंद है और उस राजा का यह कथन है कि यदि नंद की राजसभा में कौन ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति है जो बिना पिंजरा खोले इस शेर को पिंजरे से बाहर निकाल दे । चाणक्य ने जब यह सुना तो वह अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसने कहा–''लो देवी ! तुम्हारा यह पुत्र अब किसी की सहायता से तक्षशिला में अध्ययन नहीं करेगा बल्कि अपने बुद्धि कौशल के कारण मिली राजवृत्ति से अपना अध्ययन स्वयं अर्जित कोष से करेगा ।''

''यह तुम क्या कह रहे हो ब्राह्मण ! लेकिन यह पिंजरा खोले बिना सिंह को बाहर निकालेगा कैसे ?''

''यह चमत्कार है देवी ! केवल एक ही तरह से सिंह बिना पिंजरा खोले पिंजरे से बाहर निकल सकता है और वह मोम का सिंह है इसलिए–''

अब चाणक्य ने चंद्रगुप्त से कहा–''हे वत्स ! तुम्हें केवल एक काम करना है । महाराज से जाकर कहना–''महाराज मैं इस सिंह को बिना पिंजरा खोले भीतर से बाहर कर दूँगा । लेकिन इसके लिए आपको केवल लोहे की कुछ सलाखें गर्म करवा कर मंगवानी होंगी ।

''जैसे ही वे गर्म सलाखें आएं तुम एक सिरे से उसको ठंडे भाग से पकड़कर सलाख का गर्म भाग शेर के नीचे भाग से उसके पेट में

प्रविष्ट कराना। धीरे-धीरे गर्म सलाख से वह सिंह पिघलना शुरू हो जाएगा और इस प्रकार धीरे-धीरे सलाखें बदलते-बदलते वह सारा मोम का पुतला पिघलकर पिंजरे से बाहर बह जाएगा और पिंजरा खाली हो जाएगा।''

''इस पर महाराज नंद तुम पर प्रसन्न होंगे ओर वे तुम्हारी मुंहमांगी इच्छा पूरी कर देंगे।''

यह कहकर चाणक्य तक्षशिला लौट गए।

नंद की राजसभा के बीचों बीच वह पिंजरा रखा हुआ था, जिसमें वह शेर बंद था। राजा ने सभी दरबारियों, मंत्रियों और प्रजाजनों की बुद्धि-परीक्षा लेते हुए यह घोषणा की कि जो कोई इस सिंह को बिना पिंजरे का द्वार खोले पिंजरे को सिंह विहीन कर देगा उसे राजकोष से उसकी इच्छा के अनुरूप दान दिया जाएगा। राजा के मंत्रियों और दरबारियों ने जब यह सुना तो वे सभी सकपका गए, क्योंकि उन्हें तो यह ज्ञात ही नहीं था कि इस सिंह को पिंजरे से बाहर कैसे करें? किसी को कोई युक्ति नहीं सूझ रही थी। राजा नंद ने जब देखा कि सभा में कोई व्यक्ति पिंजरे को खोले बिना शेर को बाहर लाने में समर्थ नहीं है। तब राजा ने एक बार फिर घोषणा की....

''तो क्या मैं समझूँ कि मेरे इस सभा में कोई भी विद्वान्, गुणी ऐसा नहीं जो इस सिंह को पिंजरे से निकाल दे?''

''है महाराज!'' एक आवाज़ आई।

चंद्रगुप्त भीड़ में से निकलकर दरबार के बीच में आ गया और बोला, ''यदि आप मेरी उच्च शिक्षा की व्यवस्था अपने राजकोष से करें तो मैं इस सिंह को पिंजरे से बाहर निकाल सकता हूँ।''

राजा को यह देखकर आश्चर्य हुआ। यह 12 वर्ष का बालक जो अभी तक पूरी तरह युवक भी नहीं हो पाया है, क्या सत्य ही सिंह को बाहर निकाल देगा? इसी संशय में राजा ने कहा–

''यदि तुमने यह सिंह बाहर निकाल दिया तो मैं सत्य कहता हूँ

कि राज्य कोष से तुम्हें तक्षशिला विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा पाने के लिए जो राशि खर्च होगी, वह सहर्ष दी जाएगी। तुम इस सिंह को बाहर निकालकर हमारी राज्यप्रतिष्ठा की रक्षा करो''

''तो ठीक है महाराज! आप अपने सेवकों को भेजकर सात लोहे की शलाकाएं लाल गर्म करके मंगवा दें।''

इसके पश्चात् चंद्रगुप्त ने उन गर्म शलाकाओं से धीरे-धीरे सारे सिंह को मोम के रूप में पिघला कर कुछ ही देर के प्रयास से पिंजरा खाली कर दिया। अब तो नंद ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चंद्रगुप्त को तक्षशिला भेजने के लिए स्वर्ण मुद्राएं देकर विदा किया। चंद्रगुप्त की माँ को जब यह समाचार मिला तो वह फूली नहीं समाई। उसे अब सत्य ही ब्राह्मण चाणक्य पर पूरा विश्वास हो गया। उसे लगने लगा कि अब उसका यह पुत्र निश्चय ही तक्षशिला से अध्ययन करके एक गुणी नागरिक बनकर निकलेगा।

4. तक्षशिला में चाणक्य

आचार्य चाणक्य तक्षशिला पहुँच गए। विश्वविद्यालय में सभी कर्मचारी, ऋषि, महात्मा और आचार्यगण उनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। क्योंकि स्वयं आचार्य उनसे यही कह कर आये थे कि वे कुछ समय के लिए अपनी जन्मभूमि कुसुमपुर जाना चाहते हैं, वहाँ से लौटने पर ही यहाँ कार्य आरंभ करेंगे। अब तक्षशिला में नित्य ही आचार्य चाणक्य को चंद्रगुप्त के आने की प्रतीक्षा रहने लगी थी। अभी वे सोच ही रहे थे कि एक शिष्य ने आकर सूचना दी–

''आचार्य! एक युवक आपसे मिलना चाहता है। वह अपना नाम चंद्रगुप्त बता रहा है।'' चाणक्य मानो स्वप्न से जाग गए हों।

''क्या कहा! चंद्रगुप्त आ गया है?'' तभी चंद्रगुप्त ने दौड़कर गुरु को प्रणाम किया।

''आयुष्मान् भव!'' झुकते हुए चंद्रगुप्त को चाणक्य ने ऊपर उठाकर अपने सीने से लगा लिया।

आश्रमवासी सोच रहे थे कि निश्चय ही आचार्य का चंद्रगुप्त के साथ कोई विशेष अनुराग है। ''आओ चंद्रगुप्त।''

आचार्य उसे स्वयं ही उस कक्ष में लग गए जहाँ उन्होंने तक्षशिला में चंद्रगुप्त के आवास का प्रबंध किया था।

''तुम्हारी माँ तो तुम्हें भेजने में संकोच अनुभव नहीं कर रही थी?''

''नहीं, उन्होंने तो प्रसन्नतापूर्वक मुझे भेजा है। लेकिन.....''

''लेकिन क्या?'' चाणक्य ने कहा।

''आपने महाराज नंद के यहाँ सिंह वाला प्रसंग तो पूछा ही नहीं।''

''वह क्या पूछना वह तो मुझे ज्ञात ही था।''

''मालवा के दक्षिण में जो मालाबार प्रांत है। वहाँ के राजा नल वर्मा ने वह सिंह भेजा था। यह मुझे ज्ञात हो गया था। इसीलिए मैंने तुम्हें यह रहस्य बता दिया था। महाराज नंद की तो प्रतिष्ठा बच गई। देख रहा हूँ तुम अपने साथ काफी कुछ सामग्री लाए हो। मालूम होता है महाराज नंद की कुछ अधिक ही कृपा हो गई है।''

चाणक्य ने अपने दूसरे शिष्य की ओर देखकर कहा–''आओ, सिंहरण!''

''जी गुरुदेव!''

''देखो चंद्रगुप्त! यह सिंहरण है यह भी अभी नया है। तुम दोनों मित्रता कर लो, साथ-साथ रहना है। और यहाँ गांधार नरेश का पुत्र राजकुमार आंभीक भी शिक्षा ग्रहण कर रहा है।''

''अच्छा गुरुदेव।''

''किन्तु ध्यान रहे, उससे अधिक विवाद मत करना, वह अहंकारी और क्षुद्र बुद्धि वाला है। उसके पिता गांधार नरेश इस विश्वविद्यालय को काफी मात्रा में आर्थिक सहायता देते हैं। अतः उसके अहं को जगाने वाली कोई बात न कहना। वैसे वह मूर्ख है और अपने को यहाँ का सर्वे-सर्वा समझता है।

''यदि तुम्हारी किसी भावना को उसकी किसी बात से ठेस पहुँचे तो उसे टाल दिया करना। अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए मार्ग के व्यवधानों पर रुकना नहीं चाहिए अन्यथा लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाओगे।''

''जैसी आज्ञा गुरुदेव।''

दोनों ही शिष्यों, चन्द्रगुप्त और सिंहरण ने आचार्य की शिक्षा को गांठ बांध लिया।

''अच्छा सिंहरण, तुम तनिक चंद्रगुप्त के लिए कुछ भोजन की व्यवस्था तो कर दो यह इतनी दूर से चलकर आया है।''

''जो आज्ञा गुरुदेव!''

सिंहरण के जाने के बाद आचार्य चाणक्य ने चंद्रगुप्त से कहा–

''देखो वत्स ! तुम्हें इस समय एक बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि यहाँ आश्रम में अभी तुम अपना परिचय केवल चंद्रगुप्त के नाम से दोगे और यह किसी को नहीं बताओगे कि तुम सेनापति मौर्य के पुत्र हो ।''

''ऐसा क्यों आचार्य ?''

''इसलिए कि तुम नंद के राज्य से वृत्ति ले रहे हो और हो सकता है कि अपने शत्रु का पुत्र जानकर नंद तुम्हारा कोई अनिष्ट कर दे । अतः जब तक पूरी तरह सक्षम नहीं हो जाते तब तक अपने रहस्य को तुम्हें किसी दूसरे व्यक्ति पर प्रकट नहीं करना है ।''

''ऐसा ही होगा गुरुदेव ! आप निश्चिन्त् रहें ।''

चाणक्य चले गये । चंद्रगुप्त विधिवत् तक्षशिला विश्वविद्यालय में विद्याध्ययन करने लगा । नित्य प्रति प्रातःकाल ईश्वर प्रार्थना, आराधना और उसके पश्चात् विद्याध्ययन, अर्थ संचालन आदि अब उनका दैनिक कार्य हो गया । धीरे-धीरे चंद्रगुप्त विद्या में पारंगत होता गया और फिर एक दिन आचार्य चाणक्य ने अपने शिष्यों से कहा–''प्रिय शिष्यो ! कुलपति ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली है । अब मैं तुम लोगों को केवल अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिए ही रुका हूँ । इसके बाद मेरी गुरु दक्षिणा पूरी हो जाएगी और तब मैं विधिवत् इस विश्वविद्यालय से कार्यमुक्त हो जाऊँगा ।''

''लेकिन आचार्य ! हमें तो अपने राज्य की स्थिति को देखते हुए अर्थशास्त्र की अपेक्षा शास्त्र विद्या की शिक्षा की आवश्यकता है । हमें तो आप अस्त्र-शस्त्रों में पारंगत कीजिएगा ।''

सभी विद्याओं में निपुण बनाने के बाद आचार्य चाणक्य ने उन दोनों युवकों से कहा कि अब तुम अपने-अपने राज्य को लौट जाओ ।

''जाओ वत्स ! जाओ लौट जाओ ।''

''सिंहरण! तुम मालव हो और तुम मगध हो चंद्रगुप्त। यही तुम्हारे मान का कारण है लेकिन क्या मान-सम्मान मात्र इतना मान लेने से ही पूरा हो जाता है? इससे ऊपर उठकर कम से कम तुम लोग तो स्वयं को संकीर्ण प्रांतीयता से उभर कर आर्यावर्त्त को मानो, भारतवर्ष को मानो। तभी वास्तविक सम्मान को प्राप्त कर सकोगे। ध्यान रखो, जातीयता की रक्षा पूरे राष्ट्र का धर्म है, राज्य की इकाई भर से यह संभव नहीं।''

''शायद तुम्हें इस बात का अनुमान ही नहीं है, मैंने एक बार तुम्हें बहुत पहले संकेत दिया था कि आर्यावर्त के स्वायत्तशासी छोटे-छोटे राष्ट्र, जो वास्तव में राज्य भर हैं, विदेशी आक्रमण से पददलित हो जाएंगे। आज आंभीक के साथ जो विवाद पैदा हुआ है, इसमें वह निश्चय ही अपनी संकीर्ण प्रतिशोध-वृत्ति के कारण चुप नहीं बैठेगा। क्योंकि गांधार प्रदेश आर्यावर्त का पश्चिम दिशा का मुख्य द्वार है और जब यवनों का आक्रमण होगा तो जो कांटा उसके मन में चुभ गया है, वह निश्चय ही दरकेगा और वह यवनों से संधि करके उसका प्रतिशोध अवश्य लेगा।''

''तुम जानते हो कि पंचनद नरेश पर्वतेश्वर के साथ गांधार देश का पुराना वैर है, इसलिए अपने उस वैर के फलीभूत करने के लिए यह दुर्बुद्धि आंभीक यवनों से मिलकर पर्वतेश्वर को नीचा दिखाने का प्रयास करेगा और मगध तो स्वयं ही महाराज नंद के कारण पद्दलित हो रहा है। कितनी शिथिल है, उसकी सैन्य शक्ति, यह तुम जानते हो। तो क्या आर्यवर्त को ऐसा अवसर प्रदान करके नाश की ओर धकेलना है?''

''ऐसा कुछ नहीं होगा आचार्य!'' चंद्रगुप्त ने विश्वास के साथ कहा—

''यह चंद्रगुप्त मौर्य आपका शिष्य, आपके चरणों की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता है कि यवन यहाँ अपने उद्देश्य में सफल नहीं होंगे और कुछ नहीं होगा।''

''मुझे तुम्हारी शक्ति का भान है वत्स ! लेकिन इसके लिए तुम्हें मगध में जाकर साधन सम्पन्न बनना है । यहाँ समय बिताने का इस समय कोई उपयोग नहीं और मैं भी अब यहाँ से जाकर पंचनद नरेश से मिलकर विचार करता हूँ । और सिंहरण, तुम भी सावधान रहना ।''

''आपका आशीर्वाद मेरी रक्षा करेगा आचार्य !''

इसके उपरांत चंद्रगुप्त ने मगध के लिए प्रस्थान की तैयारी आरम्भ कर दी । आचार्य चाणक्य ने चंद्रगुप्त को तक्षशिला से जाने का आदेश दे दिया लेकिन वह यह सोचने लगा कि मगध में जाकर चंद्रगुप्त करेगा क्या ? मगध की सेना को क्या पर्वतेश्वर के साथ सहयोग करने के लिए कोई प्रेरित कर सकता है ? यह एक प्रश्न था और चाणक्य विचार कर रहे थे । टहलते-टहलते चाणक्य आश्रम से बहुत दूर चले गए । आश्रम में अभी भी दीपक की रोशनी जल रही थी, शायद चंद्रगुप्त अभी भी अध्ययन कर रहा है । फिर धीरे-धीरे चाणक्य के कदम अपनी कुटिया की ओर बढ़ गए । बहुत धीमे से उसने कुटिया का दरवाजा खोला और उसमें प्रवेश किया । चाणक्य को अपने कक्ष में किसी के आते हुए कदम की आहट मिली ।

''कौन ?''

''मैं हूँ आचार्य, चंद्रगुप्त ।''

''तुम अभी तक सोए नहीं वत्स !''

''पूरा आर्यवर्त सो रहा है आचार्य ! अगर मैं भी सो गया तो आपको लक्ष्य प्राप्ति कैसे हो पाएगी ?''

''तुम ठीक कह रहे हो वत्स !''

दीपक की रोशनी को मद्धम करके आचार्य अपनी खटिया पर लेट गए । आज उनका मन दुविधा में था । आश्रम का आचार्यत्व उनका कर्तव्य मार्ग निश्चित करने की प्रेरणा दे रहा था । मैं तक्षशिला चला आया और मेरा बचपन यहीं कुसुमपुर में छूट गया । चाणक्य भी

उसी स्वप्निल अंधेरे में भटक रहे थे, उनके आस-पास न आश्रम था और न वे तक्षशिला में थे, वे कुसुमपुर में थे और यह यात्रा चाणक्य ने स्वप्न में पूरी की थी। अतीत कितना चमत्कारी है, जो यात्रा करने के लिए साक्षात कई दिन लगते हैं, वह कल्पना में जब उभरता है तो पल भर में ही यहाँ से वहाँ होता हुआ सारे घटनाक्रम को उलट कर रख देता है। कहाँ कुसुमपुर, कहाँ यह तक्षशिला का आश्रम, कहाँ वह वटवृक्ष! जहाँ मैं गया ही नहीं, वहाँ मेरी स्मृति मुझे ले गई। अभी-अभी मेरे पास से केवल चंद्रगुप्त गया है और मैं पीपल के वृक्ष के नीचे से उठ कर यहाँ तक आया हूँ। रात का दूसरा प्रहर बीतने को है और मुझे नींद नहीं आ रही। पिछली बार जब वह कुसुमपुर गया था तो चाणक्य ने अपनी माँ की आँखों में इस मिलन पर आँसू नहीं देखे थे। एक ठंडापन देखा था, निराशा देखी थी, भय और कंपन देखा था। उसके मुंह से कोई स्वर नहीं निकलता था। निरीह आँखें केवल आकाश को तकती थीं।

जब कुसुमपुर से लौटते हुए मैंने पूरे गांव की ही दुर्दशा देखी तो मन आहत हो उठा। महाराज नंद ने कितने ही धर्मात्माओं और ईमानदार सेवकों और निष्ठावान सहयोगियों को अपने अहंकार का शिकार बनाया। इसका क्या उपाय हो सकता है? धीरे-धीरे उपाय सोचते-सोचते आचार्य चाणक्य को नींद आ गई। जीवन के कठिन संयमी रास्ते पर चलते-चलते कोई कितना भी व्रती क्यों न हो, अगर अकेला पड़ जाए तो थक जाता है। लेकिन मैं अकेला नहीं हूँ। सिंहरण मेरे साथ है। मालव का हुआ तो क्या हुआ? चंद्रगुप्त मेरे साथ है। वह तो मगध का है। मगध और मालव का क्या भेद, जब प्रश्न राष्ट्रीय एकता का हो। आर्यावर्त के लिए मालव भी संकुचित दृष्टि नहीं अपनाएगा।

5. मगध में वसंत उत्सव

आचार्य चाणक्य आर्यावर्त पर आने वाले संकट का हल खोजने लगे और मगध इस संकट से बेखबर वसंत उत्सव मना रहा था। महाराज नंद की विलासिता प्रवृत्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच रही थी। मगध में हर वर्ष वसंत ऋतु के अवसर पर वसंत उत्सव मनाया जाता था। इस बार यह उत्सव कुसुमपुर में आयोजित किया गया। सम्राट् अपने विलास भवन में युवतियों के साथ विलास में लीन थे। यह देखकर कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता था कि देश को पश्चिमी-उत्तरी सीमा पर पूरे विश्व को जीतने की लालसा लिए युनान सम्राट् सिकंदर अपने लाव-लश्कर के साथ तैयार खड़ा था। यहाँ महाराज नृत्यांगनाओं और नवयौवनाओं के साथ विलास में मग्न थे। वसंत उत्सव के लिए कुसुमपुर में विशाल मंडप का निर्माण कराया गया। बड़े खुले वन प्रदेश में बड़ा पंडाल लगाया गया, जिसके ऊपर झालरों से सज्जा की गई। ठीक सामने महाराज नंद का आसन प्रतिष्ठित था। और इस आसन पर गुलाब, जूही, चंपा के फूलों की महक फैल रही थी।

महाराज के सिंहासन के दोनों तरफ नगर श्रेष्ठों, राजप्रमुखों आदि के बैठने के लिए समुचित व्यवस्था की गई थी। मंच के ठीक सामने पूरा का पूरा बाड़ा मखमली कालीनों से सजाया गया था और इसके पीछे दूर-दूर तक नागरिकों के लिए उत्सव में सम्मिलित होने की व्यवस्था की गई थी। कुसुमपुर में तो बहुत दिनों बाद आज चहल-पहल दिखाई दे रही थी। प्रातः काल से ही सभी नागरिक अपने घरों को सजाने में लगे थे। कौन जाने किधर से महाराज की सवारी निकल जाए। इससे पहले भी महाराज नंद ने कितने ही वसंत उत्सवों पर अथवा किसी पर्व या मेले के कार्यक्रम में अपनी मनपसंद महिला के साथ, युवति या रमणी के साथ बलात काम-तृष्णा का खेल किया है।

नंद की यह भोग-विलासी प्रवृति सभी नागरिक जानते थे, इसीलिए नंद के नाम का आतंक उन पर छाया हुआ था। किसी में इतना साहस नहीं था कि पापी नंद का विरोध कर सके, इसलिए उल्लास के बाद भी सबकी आँखों में भय की रेखा सी-छाई थी।

महाराज नंद को रूपवती सुंदरियों के सानिध्य से ही अवकाश नहीं था, वह तो ब्रह्मास्त्र से अधिक सुंदरियों के कुटिल कटाक्ष से भय खाते थे। महाराज नंद का यह कुटिल वाक्य सुनने वाले के कानों के पर्दे बेध जाता था, जब वे अट्टहास लगाते हुए कहते थे–''नागरिकों पर तो मैं राज्य करता हूँ लेकिन मगध की नागरिकाएं मुझ पर राज्य करती हैं।''

मगध का क्या दुर्भाग्य था। जिसका राजा इतना भोगी और विलासी हो जो अपना उत्तरदायित्व तक भूल बैठा हो, उस प्रजा पर कितना कहर उतरता होगा, यह वे ही जानती थीं। इसलिऐ कहने को तो वह वसंत उत्सव था किन्तु सब लोग डरे हुए थे। पता नहीं कौन महाराज के कोप का भाजन बन जाए, इसीलिए महाराज को तुष्ट करने के लिए उत्सव में भाग लेना उनके लिए एक लाचारी था।

सुबह से दोपहर तक सारा कुसुमपुर सजा दिया गया। दोपहर के पश्चात् लोग रंगमंडल में आने आरंभ हो गये। विशेष नृत्यांगनाएं बीच-बीच में अपनी सवारी से आती रहीं और अपने नियत स्थान पर साज-सज्जा के साथ बैठती रहीं। गायक अपने संगीत साजों के साथ उपस्थित थे। तभी दूर से एक शोर हुआ। कुछ लोग आपस में बोल उठे–''महाराज आ रहे हैं, महाराज आ रहे हैं।''

महाराज नंद का रथ धूल उड़ाता हुआ अपने सैनिकों और विशेष दल के साथ कुछ ही देर में कुसुमपुर आ गया। महाराज अपने रथ से उतरकर धीरे-धीरे मंच पर आए और चारों तरफ निहारते हुए अपने सिंहासन पर विराजमान हो गए। सभी ने उल्लास के साथ आवाज लगाई–''महाराज नंद की जय हो! जय हो महाराज नंद की!''

मानो इस समय रंगमंडल साक्षात देवराज इंद्र की सभा लग रहा था। महाराज ने महामंत्री राक्षस को आदेश दिया–''उत्सव का कार्यक्रम आरम्भ किया जाए।''

''जैसी आज्ञा महाराज!'' महामंत्री ने नागरिकों को संबोधित करते हुए कहा– ''प्रिय नागरिको! आज इस वसंत उत्सव पर यह जो कुसुमपुर में आयोजन किया जा रहा है, इसमें हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी श्रेष्ठ नृत्यांगना का चुनाव किया जाएगा।''

यह कहते हुए सूची के अनुसार महामंत्री ने एक सुंदर युवति को देखते हुए आमंत्रित किया और वह युवति जैसे ही नृत्य करने के लिए महाराज से स्वीकृति लेने के लिए आगे बढ़ी, रूप के लोभी महाराज नंद ने उसके सौन्दर्य को देखते हुए कहा–''अति सुंदर! किन्तु लगता है, अभी तुम्हारा यौवन संकोच की सीमा लांघकर बाहर नहीं आया। तुम्हारी आँखों में काम का वह भाव नहीं है जो रागरंजित होता है। अभी तुम अल्हड़ हो।''

महाराज के हाथ का मदिरा का प्याला खाली हो चुका था और उनके नेत्रों में उन्माद के लाल डोरे उभर आए थे। नर्तकियाँ आती रहीं, नूपुर खनकते रहे और महाराज नंद नृत्यशाला से उठकर अपने कुंज में चले गये। कार्यक्रम अभी चल रहा था। महाराज के सेवक महाराज के लिए मदिरा और सुंदरियों की सेवा में लगे हुए थे। वसंत उत्सव में अब दृश्य बदल रहा था। महाराज नंद मदिरा के उन्माद में बेसुध नागरिकाओं के साथ लिप्त थे और महामंत्री राक्षस एक नृत्यांगना से मनुहार कर रहा था–''चलो सुवासिनी! कुंज चलते हैं।''

कुंज में न जाकर सुवासिनी ने नागरिकों के इच्छानुसार यहीं नृत्य करने को तैयार हो गई। नागरिक उल्लास से उद्घोष करने लगे।

''सुन्दरियों की रानी सुवासिनी की जय हो।''

सुवासिनी अपने पैरों के घुंघरुओं का स्वर बजाती हुई उन्माद में हाथ से संकेत करती हुई नृत्य, लय, ताल से सुरों को बांधती हुई बड़ी

आकर्षक मुद्रा में नृत्य करने लगी । तत्पश्चात् कच और देवयानी का नाटक भी खेला ।

महामंत्री राक्षस ने महाराज से कहा–''महाराज ! सुवासिनी नृत्य करके अब थक गई है, शायद वह विश्राम चाहती है ।'' महाराज नंद ने राक्षस का यह अनुरोध स्वीकार कर लिया ।

सुवासिनी अपने शिविर में लौट गई और महाराज अपने विश्राम स्थल में । लेकिन महाराज को चैन कहाँ ! महाराज नंद ने अपने एक सेवक से कहा–''जाओ ! उस अभिनेत्री को यहाँ बुलाकर लाओ ।''

सेवक सुवासिनी के कक्ष में पहुँचा और उसने महाराज का संदेश सुनाया । सुवासिनी को इसी बात का भय था, इसलिए उसने अपनी सुरक्षा के लिए एक कटार अपनी अंगिया में छिपा ली और ऊपर से चुनरी से उसको ढक लिया और थके कदमों से महाराज के शिविर में उनकी आज्ञा अनुसार उपस्थित हो गई ।

चाणक्य कुसुमपुर आया था तो उसका एक आकर्षण सुवासिनी भी थी किन्तु ब्राह्मण के द्वारा यह जानकर कि सुवासिनी अब यहाँ नहीं रहती और उसका पाना भी दुर्लभ हो गया है, किसी को भी पता नहीं कि वह कहाँ है, आजन्म ब्रह्मचारी रहने का व्रत लेकर चाणक्य निराश लौट आया ।

शायद इस विश्वास का दूसरा छोर पकड़े सुवासिनी भी भटक रही थी अपनी यात्रा के पड़ाव पर पहुँचने के लिए । महाराज के सामने जैसे ही सुवासिनी प्रणाम की मुद्रा में खड़ी हुई, महाराज ने कहा–''तुम्हारा अभिनय तो अभिनय नहीं हुआ ।''

उनका एक चाटुकार बीच में बोल उठा–''ऐसा लग रहा था मानो साक्षात देवयानी कच के प्रेम में आतुर समर्पण के लिए पूरी तरह तैयार हो ।''

झूमते हुए नंद ने कहा–''जाओ स्वीकार है ।'' और फिर राक्षस सुवासिनी के सामने अपना गायन शुरू करता है ।

नागरिक गण जयघोष करते हैं–

''सम्राट की जय हो ! महामात्य राक्षस की जय हो !''

मदिरा के उन्माद में झूमते हुए महाराज नंद बोल उठे, ''मेरी कामनाओं की रानी ! सुंदर गंध फैलाने वाली सुवासिनी ! तुम्हारी जय हो !''

एक बार राजकुमारी कल्याणी अपनी सवारी पर बैठी हुई सखी के साथ भ्रमण के लिए जा रही थीं । राक्षस अपने मार्ग पर बढ़ गया और राजकुमारी आगे बढ़ गई । राजकुमारी अपने राज-उद्यान में अभी प्रवेश ही कर पाई थीं कि अकस्मात एक शिकारी चीता अपने पिंजरे से निकलकर भाग खड़ा हुआ है, उन्हें यह समाचार मिला । वह चीता दौड़ते हुए नगर के उस उद्यान में आया और चीते ने राजकुमारी और उसकी सखी पर आक्रमण कर दिया, यह वह जान ही न सकी । उन्होंने तो जब आँखें खोली तो उस चीते को दूर एक वृक्ष के पास मरा हुआ पाया और पास की झाड़ियों से निकलकर एक तेजस्वी युवक ने उनसे पूछा–''कहिए राजकुमारी जी ! आप सकुशल तो हैं ?''

''हां वीर युवक ! हम तो सकुशल हैं लेकिन तुम कौन हो ?''

''मैं तक्षशिला का स्नातक चंद्रगुप्त आपको नमस्कार करता हूँ, राजकुमारी जी ।''

''मैं तुम्हें पहचान नहीं पाई ।''

''हाँ, कई वर्ष तक्षशिला में रहने के कारण जो किशोर यहाँ छोड़ गया था, वे अब युवक हो गए हैं । मैं भी अपने कई बाल साथियों को पहचान नहीं पाया ।''

''आपने हमारी जान बचा कर जो हम पर अनुग्रह किया है, हम इसके आभारी हैं ।''

अभी ये लोग बात कर रहे थे कि तभी महामंत्री और उनके साथ कई सैनिक उद्यान में राजकुमारी की चीख सुनकर आ गए ।

''कहिए राजकुमारी जी ! आपको कहीं चोट तो नहीं आई ?''

''नहीं महामंत्री राक्षस! यह जो स्नातक तक्षशिला से आए हैं, इनके हाथ में रक्तसनी तलवार देख रहे हो, इन्होंने ही इस जंगली चीते का शिकार किया है।''

''मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ कुमार।''

''इसमें धन्यवाद की कोई बात नहीं महामंत्री। जिस राज्य का मैंने अन्न खाया है और जिस राज्य के द्वारा प्राप्त राजवृत्ति से मैंने तक्षशिला विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की है, उसकी राजकुमारी की रक्षा करना मेरा धर्म है।''

ये बातें सुनकर राजकुमारी ने अनुरोध करते हुए चंद्रगुप्त से कहा—''कुमार! चलो मैं तुम्हें अपने पिता महाराज नंद से पुरस्कार दिलाती हूँ।''

''मैंने यह काम पुरस्कार के लिए नहीं किया लेकिन महाराज से मिलने की मेरी इच्छा अवश्य है। मुझे आभार भी प्रकट करना है और आचार्य चाणक्य का संदेश भी देना है।

महाराज नंद को जब यह समाचार मिला कि तक्षशिला से एक स्नातक आया है, उसने आते ही राजकुमारी की चीते से रक्षा करते हुए राज्य के प्रति अपनी निष्ठा का प्रदर्शन किया है तो महाराज अत्यंत प्रसन्न हुए लेकिन जब उन्हें यह समाचार मिला कि यह कुमार तक्षशिला के आचार्य चाणक्य का संदेश लाया है तो उनकी भृकुटि तन गई। चंद्रगुप्त के आने पर महाराज ने उससे कहा, ''चणी के उस दुष्ट पुत्र ने तुम्हें क्या संदेश देकर भेजा है? उसमें यह साहस कैसे आ गया कि तुम्हें अपना संदेश देकर यहाँ भेज सके।''

''क्षमा करें महाराज। लेकिन आपको आचार्य चाणक्य के प्रति इतने कठोर शब्द शोभा नहीं देते। आप कृपया गुरुदेव का अपमान न करें। मैं यहाँ उत्तरापथ से एक विशेष उद्देश्य से आया हूँ और आचार्य चाणक्य ने भी यही कहा है।''

''देखो कुमार! तुमने मेरी पुत्री के प्राणों की रक्षा की है इसलिए

मैं तुम्हारा यह अपराध क्षमा करता हूँ। तुम जो कहना चाहते हो कहो लेकिन दुष्ट ब्राह्मण के लिए आचार्य संबोधन मेरे सामने मत करो।''

''महाराज! मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह आप ही के लिए नहीं बल्कि पूरे आर्यावर्त के हित की बात है। और इस समय हमें आपसी वैमनस्य छोड़कर एक जुट होकर शत्रु का सामना करना होगा।

''आपने मुझे ज्ञान प्राप्त करने के लिए राजवृत्ति देकर तक्षशिला विश्वविद्यालय भेजा था और मैंने अपनी आँखों से गांधार देश का पतन देखा है और यह आपत्ति पंजाब प्रदेश के ऊपर मंडरा रही है, उसके बहुत करीब आ गई है। मेरा कथन केवल इतना है कि यह संकट पर्वतेश्वर से आगे पूर्व में मगध और मध्य देश में मालव तक पहुँचने में देर नहीं लगेगी।''

''हे मूर्ख युवक! तो क्या तुम समझते हो कि मैं पुरु की रक्षा करूँगा, जिसने मुझे अपमानित किया था। और यवनों की सेना अगर उत्तरापथ से पर्वतों तक आ गई है तो पर्वतेश्वर अपना शौर्य दिखाएं।''

''देखो कुमार! पर्वतेश्वर के गर्व को तो मैं भी चूर करना चाहती हूँ। मैं वृषल कन्या हूँ और उसे यह दिखाना चाहती हूँ कि राजकन्या किसी क्षत्राणी से कम नहीं होती।

''आप सेनापति को आज्ञा दें पिताजी! कि गांधार युद्ध में मगध की सेना अवश्य जाए और उसका संचालन मैं करूंगी और पराजित पर्वतेश्वर की सहायता करके मैं उसे नीचा दिखाऊँगी।''

''राजकुमारी! यह राजनीति का प्रश्न है, महलों का विलास नहीं।'' राक्षस ने कहा, ''पर्वतेश्वर को अपने गर्व का फल स्वयं भोगने दो।''

''देखो चंद्रगुप्त! मगध की सेना पर्वतेश्वर की रक्षा के लिए नहीं जाएगी। और न उस नीच उदंड चाणकय का कोई संदेश मेरे लिए महत्व रखता है। तुम्हें अपना ही नागरिक मानकर यह परामर्श देता हूँ

कि तुम मगध में राज्य की सेवा करो ।''

''महाराज क्षमा करें, आप यहाँ सीमा से इतनी दूर वसंत उत्सव में लिप्त हैं लेकिन यह जान लीजियेगा कि मगध समूचे राष्ट्र राज्य भारत का एक इकाई राज्य है और पूरा आर्यावर्त उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम चारों दिशाओं के सभी राज्यों को मिलाकर बनता है । यदि सुलेमान पर्वत से परे के हिस्से के यवन आक्रमणकारी इस आर्यावर्त की शान को क्षति पहुंचाएगे और हमारी संस्कृति को आघात पहुँचायेंगे तो इतिहास आपको क्षमा नहीं करेगा महाराज ! मेरा निवेदन है कि आप अपने पूर्व वैर को त्यागकर आचार्य चाणक्य के परामर्श पर ध्यान दें ।''

नंद को यह सुनकर क्रोध आ गया और उसने कहा–''सैनिक ! इस उदंड कुमार को राज्य की सीमा से बाहर कर दो । यह राज्यघाती है, द्रोही है । इसकी रगों में भी स्वाभिमान का नहीं बल्कि अपमान का खून दौड़ रहा है ।'' ज्यों ही सैनिक चंद्रगुप्त को बंदी बनाने के लिए आगे बढ़े, उसने अपनी चमकती तलवार से उन सैनिकों को रोक दिया ।

''महाराज ! मगध के सैनिकों में अभी इतना साहस नहीं कि चंद्रगुप्त के हाथ में तलवार होते हुए उसे बंदी बना लें । मैं आपका सम्मान करता हूँ लेकिन आपकी बुद्धि पर जो संकीर्णता और पारस्परिक द्वेष का पर्दा पड़ा हुआ है उसे अवश्य दूर करना होगा इसलिए अब यह जान लीजिएगा कि आपके राज्य के दिन पूरे हो गए हैं ।

''आचार्य चाणक्य ने जो आपको वंशमूल सहित नष्ट करने का संकल्प किया था, मैं आपकी सभा में उस संकल्प को दोहराते हुए यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि आर्यावर्त की रक्षा के लिए यदि मुझे मगध से विद्रोह भी करना पड़ा तो मैं करूँगा ।'' और यह कहते हुए चंद्रगुप्त विलासी राजा नंद की सभा से कूच कर गया और तक्षशिला लौट आया ।

6. सिन्धु के उस पार सिकन्दर

कितने दुःख की बात है, सिन्धु नदी पर पुल बनाया जा रहा है और उसकी देख-रेख गांधार नरेश का पुत्र आंभीक कर रहा है और उसके असहाय पिता केवल दर्शक बन कर रह गए हैं । गांधार नरेश के मन में बार-बार यही प्रश्न उठ रहा था कि वे चाहे तो आंभीक को रोक सकते हैं, अगर धृतराष्ट्र भी चाहते तो दुर्योधन को रोक सकते थे । लेकिन महाविनाश को कौन कब रोक सका है । अभी वे सोच ही रहे थे कि यवन सैनिक उनकी अपनी ही बेटी को बंदी बनाए उनके सामने प्रस्तुत हुआ ।

''तुम ? तुम ?''

''हां महाराज !''

''यह क्या मजाक है ? सैल्यूकस ! क्या तुम नहीं पहचानते कि यह मेरी बेटी अलका है ।''

''महाराज ! मैं यह तो नहीं जानता कि यह कन्या आपकी पुत्री है लेकिन इतना अवश्य जानता हूँ कि नदी पर जो पुल बांधा जा रहा है, उसका मानचित्र इन्होंने एक स्त्री से बनवाया और जब वह चित्र मैंने इनसे मांगा तो पता नही कैसे एक युवक बीच में आ टपका । मैं निवेदन करता रह गया और उसने मुझ पर तलवार का वार कर दिया ।''

''क्यों बेटी ! क्या यह सच कह रहे हैं ?''

''हां पिताश्री !''

''तो सैल्यूकस, इसमें चिन्ता की क्या बात है ? मानचित्र से तुम्हारा पुल बनने का काम रुक तो नहीं जाएगा ?''

''लेकिन महाराज ! मानचित्र पुल को विध्वंस करने में सहायक हो सकता है ।''

''मेरी बेटी नासमझ नहीं है ।''

तभी आंभीक बीच में बोल पड़ा—''पिताजी! आप नहीं समझते, हमारे बीच एक बहुत बड़ा षडयंत्र पल रहा है और उसका केन्द्र तक्षशिला में पनप रहा है और अलका उस रहस्य की कुंजी है ।''

कुटिल मुस्कराहट चेहरे पर लाते हुए अलका ने कहा—''तभी आपने मुझे बंदी कराया है भाई! तुम कायर हो आम्भीक! सिंहरण से तुम परास्त हुए चंद्रगुप्त का सामना करने का तुममें साहस नहीं और पर्वतेश्वर के विरुद्ध सिकंदर से संधि कर ली । इस तरह शक्ति का संतुलन तुमने झकझोर कर रख दिया ।'' और फिर अपने पिता गांधार नरेश को संबोधित करते हुए अलका ने कहा—''पिताश्री! आज भाई ने मुझे बंदी बनाया है, कल आपको बनायेगा और इस तरह अपने अहम् की तुष्टि के लिए गांधार की जनता नीच यवनों की दास हो जाएगी और इसका उत्तरदायित्व होगा आपकी शिथिलता पर और आपके पुत्र की अहम्मन्यता पर ।''

''तुम यह क्या बहकी-बहकी बातें कर रही हो? तुम नहीं जानती हो कि राजनीति किसे कहते हैं और उस उद्दंड पर्वतेश्वर ने मेरा जो अपमान किया है, उसका बदला भी तो मुझे उससे लेना था ।''

''अलका! यह बात तो मेरे मन में भी फांस की तरह चुभी हुई है कि पर्वतेश्वर ने आंभीक के विवाह का प्रस्ताव अपनी बेटी के साथ करने से अस्वीकार कर दिया था और यहाँ तक कि वितस्ता के इस ओर उसने अपनी चौकी भी बना ली थी जो संधि के विरुद्ध है ।''

''इसके लिए तो आप उससे युद्ध कर सकते थे । एक बाहरी हस्तक्षेप से तो बचा ही जा सकता था ।''

''तुम दोनों ठीक कह रहे हो लेकिन मैं क्या करूं?''

''मुझे दंड दीजिए पिताजी!''

''यह कैसे संभव हो सकता है?''

''तब आज्ञा दीजिए मैं राज्य मंदिर छोड़कर चली जाऊँ ।''

''क्या करोगी जाकर ?''

''विद्रोह करूंगी गांधार में जाकर ।''

''नहीं, तुम ऐसा नहीं कर सकतीं बेटी ! यह हमारी प्रतिष्ठा का प्रश्न है ।''

''जन्मभूमि की प्रतिष्ठा का प्रश्न आपकी प्रतिष्ठा से बड़ा है पिताजी !''

''तब मैं तुम्हें अपने हाथों से मार डालूंगा अलका ।'' आंभीक ने उत्तेजित होकर अपनी खड्ग निकाल ली ।

''अलका ठीक कहती है आंभीक ! यह खड्ग म्यान में रख लो । तुममें यदि क्षत्रियत्व होता तो तुम पुरुराज से स्वयं युद्ध करते, भीरु होकर यवनों से संधि का कायरतापूर्ण आचरण न करते ।''

अलका मन में सोच रही थी—चलो पिता बुद्ध ही सही लेकिन धर्म के पक्षधरों में आगे हैं । वह तेज गति से महल से निकल जाती है । यहाँ गांधार प्रदेश में पिता और पुत्र के बीच एक द्वंद चल रहा है । दोनों ही विचार के अलग-अलग छोर पर खड़े हैं । इधर अलका गांधार पर यवनों के आधिपत्य से चिंतित है, दूसरी ओर आचार्य चाणक्य पंचनद नरेश पर्वतेश्वर को समझना चाहते हैं और वह चाणक्य की बात सुनकर बोल उठता है—''आर्य चाणक्य ! आपकी बातें मेरी समझ में पूरी तरह नहीं आ पाई । मुझे इस समय यवनों से युद्ध करना होगा, मैं अपना एक भी सैनिक मगध नहीं भेज सकता ।''

''पर्वतराज ! तुम समझ क्यों नहीं पा रहे ? विलासी नंद को पराजित करने के लिए मुट्ठी भर सैनिक ही तो चाहिए और फिर उसके बाद एक लाख सैनिकों से अधिक विस्तार वाली समूची मगध सेना तुम्हारी पताका के नीचे युद्ध करेगी । जिस सेना ने तुम्हारे साथ सहयोग न करने का रास्ता अपनाया था, नंद के अपदस्थ होने के बाद वही सेना तुम्हारी विजय में अपना सहयोग देगी पर्वतेश्वर ।''

यह योजना चाणक्य की थी कि यदि पंचनद नरेश अपनी सेना की एक टुकड़ी को मगध के लिए रवाना कर दें तो एक ही रात्रि में पाटलिपुत्र नरेश नंद का सूर्य अस्त किया जा सकता है और फिर उसके स्थान पर आर्य चन्द्रगुप्त को प्रतिष्ठित करके मगध का सारा सैन्य बल समूचे आर्यावर्त की रक्षा के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है ।

''इस मगध विद्रोही का नेतृत्व कौन करेगा? कौन खड़ा होगा नंद के विरुद्ध?''

''मगध के पूर्व सेनापति मौर्य का पुत्र चंद्रगुप्त ।''

''तो क्या आप वृषल को राज्य सिंहासन देंगे?''

''तुम भूल रहे पर्वतेश्वर! आर्य आचरण के लोप होने पर ही ये लोग वृषल बने वरना वास्तव में तो ये क्षत्रिय ही हैं । बौद्धों के कारण इनके संस्कार छूट गए । मुझे विश्वास है कि चंद्रगुप्त अपने क्षत्रिय होने का पूरा परिचय देगा ।''

''अच्छी कल्पना कर लेते हैं आप!'' पर्वतेश्वर ने हंसकर कहा ।

''यह कल्पना नहीं, परंपरागत सत्य है राजन! स्मरण करो, जब महर्षि वसिष्ठ का ब्राह्मणत्व संकट में आया था तब कितनी ही जातियां क्षत्रिय धर्म में संस्कारित हो गई थीं । पल्लव, दरद और कंबोज सभी क्षत्रिय बन गए थे ।''

''आप अपने से उन समर्थ ऋषियों की तुलना कर रहे हैं?''

''इसका विचार तो भविष्य करेगा पर्वतेश्वर कि ऋषि कौन बनता है? तुम अभिमान में तर्क से नहीं कुतर्क से उलझे हो । तुम इसके निर्णायक नहीं हो सकते ।''

''मेरी सेना भी मगध के लिए उपलब्ध नहीं हो सकती ।''

''ठीक है, यदि तुम आर्यावर्त को पदक्रांत ही करना चाहते हो तो करो लेकिन इतना स्मरण रखना कि तुमने अपनी पराजय के लिए मार्ग स्वयं प्रशस्त किया है और चयन में भूल भी तुम्हारी है ।''

''तुम चले जाओ चाणक्य, मैं किसी अभिशाप से नहीं डरता। तुम मेरी सीमा से बाहर हो जाओ।''

और चाणक्य आकाश की ओर देखकर मानो विधाता से कह रहे थे—''ओ तिरस्कृत ब्राह्मणत्व! देख नियति का दृश्य और अपने कर्म की परिणति।''

चंद्रगुप्त उनके साथ था। दोनों अपने मार्ग पर चलते हुए बहुत थक गए थे।

''आचार्य! अब तो शरीर की नसें ढीली पड़ गई हैं, बहुत प्यास लगी है। कुछ देर के लिए कहीं ठहरना चाहिए।''

''लेकिन वहीं तो ठहरोगे वत्स, जहाँ पानी होगा, प्यास बुझेगी।''

धीरे-धीरे चलकर वे एक सरोवर के पास आकर ठहर गए।

''अब और नहीं चला जाता आचार्य!''

''ठीक है, तुम वृक्ष के नीचे बैठ जाओ। मैं सामने से जल लेकर आता हूँ।''

ज्यों ही चाणक्य जल लेने गए, सोए हुए चंद्रगुप्त पर एक भीषण व्याघ्र कूदकर उसे अपना भोजन बनाने के लिए आतुर होता हुआ गुर्राने लगा। पता नहीं कहाँ से यवन सेनापति सैल्यूकस ने यह देख लिया और पहले तो शीघ्र सैल्यूकस ने उस व्याघ्र को अपने धनुष से घायल करके मार डाला और फिर चंद्रगुप्त की चेतना को लौटाने का प्रयास करने लगा। तभी चाणक्य जल लेकर आ गए। चाणक्य के हाथ में जल देखकर सैल्यूकस ने कहा—''क्या इस पथिक की प्राणरक्षा के लिए आप थोड़ा जल दे सकेंगे?''

चाणक्य जल के छींटे दकर चंद्रगुप्त को चैतन्य करते हुए अपरिचित सैल्यूकस से पूछते हैं —''तुम कौन हो?''

''मैं यवन सेनापति सैल्यूकस हूँ। और आप?'' उसका प्रश्न था।

''एक ब्राह्मण ।''

''और यह जो वीर पुरुष है, क्या तुम इसके साथी हो?''

''हाँ सेनापति! मैं इस राजकुमार का गुरु हूँ ।''

''आप कहाँ रहते हैं?''

''यह चंद्रगुप्त मगध का निर्वासित राजकुमार है ।''

''अरे! कुछ विचारता हुआ सैल्यूकस कहता है–'' तब तो अभी आप मेरे शिविर में चलें क्योंकि इस समय इनके लिए विश्राम की परमावश्यकता है ।'' और तीनों ही सैल्यूकस के शिविर की ओर चल देते हैं ।

अचानक उधर से आते हुए अलका चंद्रगुप्त और चाणक्य को सैल्यूकस के साथ देखकर आश्चर्यचकित रह जाती है । इसका अर्थ यह हुआ कि आर्य चाणक्य और चंद्रगुप्त भी यवनों के साथ हो गए? जब वर्षा और धूप फसल को गलाने लगे, जलाने लगे तो देश की हरी-भरी खेती का रक्षक कौन होगा? यही सोचते हुए अलका गांधार छोड़ने से पहले महात्मा दांडायन को नमस्कार करने के लिए चल दी । महात्मा दांडायन का आश्रम सिंधु नदी के किनारे पर ही स्थित था । थकती, फिर भी चलती अलका, धीरे-धीरे आगे बढती रही और आश्रम में पहुँच ही गई । महात्मा दांडायन ने कहा–''कहो अलका! क्या कष्ट है? तुम्हारे चेहरे पर अभी भी इतनी चिन्ता?''

अभी अलका कुछ उत्तर देती कि तभी उसने देखा कि आचार्य के आश्रम में चाणक्य और चंद्रगुप्त प्रवेश कर रहे हैं। वह आश्चर्यचकित रह गई । अभी कुछ देर पहले ही तो वह इन्हें यवन सेनापति के साथ जाते हुए देख चुकी थी ।

अलका को इस प्रकार मौन देखकर दांडायन मुनि ने कहा–''आओ आचार्य चाणक्य विराजो ।''

आचार्य के साथ चंद्रगुप्त भी मुनि को प्रणाम करके आसन पर बैठ गया ।

''हां तो अलका ! मैं तुमसे पूछ रहा था कि तुम चिन्तित क्यों हो ?''

''मैं गांधार छोड़कर जाना चाहती हूँ मुनिवर ! इसीलिए आपका आशीर्वाद लेने आ गई ।''

''लेकिन तुम तो गांधार की लक्ष्मी हो ! तुम्हारे मन में यह विचार क्यों ?''

''यवनों के हाथों अपनी स्वतंत्रता बेच कर उनके उत्कोच पर जीने की शक्ति मुझमें नहीं है मुनिवर ।''

''एक सन्देह का निवारण और करना चाहती हूँ मुनिवर !''

''क्या ?''

''ये जो आचार्य चाणक्य और चंद्रगुप्त आपके सम्मुख बैठे हैं, ये अब यवनों के पक्षधर क्यों होना चाहते हैं ? इन पर तो मैं बहुत विश्वास करती थी ।''

''अलका !'' चंद्रगुप्त ने कहा– ''किसी की भलाई को स्वीकार करना चाहिए और शायद तुम नहीं जानती, व्यक्ति कृतज्ञता के प्रति बंध जाता है ।''

अभी ये लोग बात कर ही रहे थे कि एक यवन ने मुनि के आश्रम में प्रवेश किया और उन्हें प्रणाम करते हुए यह सूचना दी कि महाराज सिंकदर उनसे मिलना चाहते हैं । सिकंदर को देख प्रसन्न मुद्रा में मुनि उसका प्रणाम स्वीकार करते हुए बोल उठते हैं–''आश्रम में तुम्हारा स्वागत है सम्राट् सिकंदर ! प्रभु तुम्हें सद्बुद्धि दें ।''

''मुनिश्रेष्ठ! मैं तो आपसे आशीर्वाद लेने आया हूँ, जय का आशीर्वाद।''

हंसकर मुनि ने कहा–''सम्राट् को जिस आशीर्वाद की आवश्यकता होती है वह तो मैंने तुम्हें पहले ही बिना मांगे दे दिया और इससे बड़ा आशीर्वाद तुम्हें देने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है, सम्राट् सिकन्दर!''

वहीं पर आचार्य चाणक्य और चंद्रगुप्त से सिकंदर का परिचय हुआ और सिकंदर ने चंद्रगुप्त को अपने शिविर में आने का न्योता दे डाला। कुछ देर पश्चात् सिकंदर ने मुनि को प्रणाम करते हुए कहा–''अच्छा मुनिवर! लौटती बार आपके दर्शन अवश्य करूँगा जब भारत विजय करके लौटूंगा।''

''सिकंदर! तुम शायद भूल रहे हो, जिस युवक को तुमने अपने शिविर में आमंत्रित किया है, वही तो भारत का भावी सम्राट् है। तुमने इसमें तेजस्विता के दर्शन किए लेकिन सम्राट् को नहीं देख पाए? इनसे मिलो, ये हैं आचार्य चाणक्य! भारत के भावी सम्राट्-निर्माता। यदि भारत में व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा और पारस्परिक द्वेष को राष्ट्रहित में समायोजित करने का भाव पैदा हो सका होता तो तुम सिन्धु नदी को पार करके इस भूमि पर नहीं आ पाते। यह तो भारत का दुर्भाग्य है।

''तुम भावी सम्राट् के निर्माता आचार्य चाणक्य को भी प्रणाम करो। इनका आशीर्वाद तुम्हें सद्बुद्धि देने में सहायक होगा।''

सम्राट् सिकंदर आचार्य चाणक्य को मुनि दांडायन के साथ प्रणाम करता हुआ आश्रम से विदा हुआ। किसी प्रसंगवश पुनः सिकन्दर से चंद्रगुप्त की मुलाक़ात होती है।

सिकंदर ने कहा –''ठहरो सैल्येकस! और चंद्रगुप्त, तुम बताओ। क्या मगध का शासक नीच कुल में जन्मा है? और तुम उस राज्य को हस्तगत करने का प्रयत्न कर रहे हो?''

''ऐसा नहीं है सम्राट्! वास्तविकता यह है कि वह शासक बड़ा क्रूर है और प्रजा उससे असन्तुष्ट है। मैं तो उसका उद्धार चाहता हूँ।''

''केवल उस ब्राह्मण के कहने पर?''

''उन्हें, आचार्य चाणक्य को, आप केवल ब्राह्मण न समझें। उनका पूरा जीवन इसी संघर्ष में बीता है क्योंकि मगध उनकी भी और मेरी भी मातृभूमि है और इसीलिए हमारा यह संकल्प है कि प्रजा को उसका अधिकार मिलना चाहिए।''

''हाँ, इन परिस्थितियों में तो यह असम्भव नहीं लगता।''

''क्यों, असंभव क्यों नहीं है?''

''अरे जब हमारी सेना सहायता करेगी तब असंभव कैसे रह जाएगा?''

''लेकिन मुझे आपकी सहायता तो स्वीकार नहीं है।''

चंद्रगुप्त की बात सुनकर सिकंदर को क्रोध आ गया और उसने कहा– ''इतने दिनों तक तुम हमारे शिविर में फिर किस लिए हो?''

''आपका निमंत्रण था और सैल्यूक्स ने मेरी प्राणरक्षा की थी, इसलिए उनका अनुरोध मैं टाल नहीं सकता था लेकिन आप अगर यह सोच रहे हैं कि मैं यहाँ यवनों को अपना शासक बनाने के ख्याल से आया हूँ तो यह आपका भ्रम है सम्राट्।''

''लेकिन इन्हीं यवनों के द्वारा ही जो आक्रांत नहीं है, अब जीता जाएगा।''

''यह तो भविष्य पर निर्भर करता है सम्राट्!''

''मैं आपका सम्मान करता हूँ जिस तरह मगध से प्यार करता हूँ। परंतु यवन लुटेरों की सहायता से मैं मगध को पददलित नहीं होने दूँगा।''

''तुम जानते हो कि तुम किससे बात कर रहे हो चंद्रगुप्त! तुम बन्दी बनाए जा सकते हो।''

''मैंने झूठ कुछ भी नहीं कहा महाराज ! लूट के लोभ से जो लोग आपके साथ व्यवसाय लाभ के लिए आकर जुड़ गए, वे लुटेरे नहीं हैं तो और क्या हैं ? उन्हें सेना कहना सेना का अपमान होगा ।''

इस वाक्य ने सिकंदर के क्रोध को और भड़का दिया और उसने तुरंत ही आदेश दिया कि चंद्रगुप्त को बंदी बना लिया जाए । वहाँ खड़े आम्भीक और फिलिप आदि ने चंद्रगुप्त को अपनी पकड़ में लेने का असफल प्रयास किया और चंद्रगुप्त एक वीर योद्धा की तरह उनको घायल करता हुआ, यह कहता हुआ निकल गया, ''अच्छा सम्राट् ! अब प्रभु ने चाहा तो युद्ध भूमि में मिलेंगे ।''

7. सिकन्दर और पर्वतेश्वर का युद्ध

झेलम नदी के किनारे सघन वन प्रदेश में एक स्थान पर चाणक्य विचार मुद्रा में बैठे हुए हैं। अलका नदी के किनारे से घूमती हुई उनके पास आकर बैठ जाती है। चंद्रगुप्त और सिकंदर का संवाद सुनकर चाणक्य कुछ सोचने लगते हैं। उनके सोच में अब प्रश्न यही शेष रह गया है कि पुरु के साथ होने वाले इस युद्ध में उनकी अपनी क्या भूमिका होगी।

इसी विषय में आचार्य का मन जानने के लिए अलका ने प्रश्न कर दिया—''आचार्य! अब आगे क्या विचार किया है? कैसा निर्धारण होगा इस युद्ध का और क्या भूमिका होगी हमारी?''

''अलका, अब केवल पलायन ही शेष रह गया है।''

''निर्देश दीजिए, आचार्य। कम से कम मेरे साथ तो व्यंग्य न करें।''

''तो फिर दूसरा उपाय क्या हो सकता है?''

''है क्यों नहीं?'' अलका ने कहा।

आचार्य चाणक्य ने चंद्रगुप्त की ओर देखते हुए कहा—''हो सकता है।''और फिर चंद्रगुप्त से प्रश्न किया—''क्यों वत्स! संन्यास लेने की इच्छा है क्या? वैसे यह भी एक सरल उपाय हो सकता है?''

''ऐसा कभी नहीं हो सकता आचार्य! मैं तो यवनों को हर पग पर बाधा पहुँचाने के लिए कटिबद्ध हूँ और जब तक मुझमें शक्ति है, मैं अपना प्रयत्न करता रहूँगा।''

''मुझे तुमसे यही आशा है वत्स! लेकिन एक चिन्ता भी है कि अभी तक सिंहरण क्यों नहीं आया?''

अलका और चंद्रगुप्त ने एक साथ कहा–''समाचार तो मिल गया होगा और मिल जाना चाहिए।''

अभी वे बात कर ही रहे थे कि तभी वृद्ध गांधार नरेश सिंहरण का सहारा लिए हुए वहाँ पधार गए। सिंहरण ने गांधार नरेश को उपयुक्त स्थान पर बैठाते हुए आचार्य को प्रणाम किया। अलका ने जब अपने थके पिता को इस प्रकार देखा तो वह उनके गले से लिपट गई। पिता के गले से रुंधे शब्दों में केवल एक ही बात निकली–''अरे तू कहाँ भटक रही है बेटी।''

पिता के दर्द को कम करने के लिए अलका ने उल्लसित होकर कहा–''कहीं नहीं पिताजी! देखो मैंने आपके लिए छोटी-सी झोंपड़ी बना रखी है।''

''मैं समझता हूँ, खूब समझता हूँ। तू मुझे झोंपड़ी में बैठाकर फिर छोड़ जाएगी।''

चाणक्य ने यह सुनकर कहा –''राजन्!''

अभी चाणक्य का वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि गांधारराज ने बीच में ही रोककर कहा–''आचार्य चाणक्य! जिस दुर्भाग्यशाली पिता के पुत्र ने राष्ट्र से विश्वासघात किया हो और कन्या घर छोड़ने के लिए बाध्य हो गई हो, मैं वही अभागा गांधारराज हूँ। मेरी यह बेटी जब महलों को छोड़ चुकी है तो झोंपड़ी के प्रति उसकी क्या आसक्ति होगी। यह तो कभी भी मुझे छोड़कर जा सकती है, लेकिन राजन्! प्रश्न यहाँ महल या झोंपड़ी का नहीं, राष्ट्र की अस्मिता का है और निजी मान प्रतिष्ठा का भी।''

यह सुनकर भावुक अलका ने सिंहरण के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा–''मालव मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञ हुई। कम से कम पिता मेरे पास हैं अब, इसका मुझे संतोष रहेगा क्योंकि भाई के साथ इनकी आत्मा कष्ट ही पाती।''

गांधारराज के विश्राम की व्यवस्था करने के लिए अलका उनके कक्ष में ले गई। गांधारराज के जाने के बाद सिंहरण ने कहा—''आज्ञा दीजिए आचार्य! अब हम लोगों के लिए क्या कर्तव्य है? क्योंकि आक्रमण की स्थितियाँ अब अधिक तेज होने की संभावना बढ़ रही हैं।''

''ठीक है, किन्तु अब हमारी योजना के अनुसार हमें युद्ध नहीं करना है बल्कि नाटक करना है। मैं ब्रह्मचारी के रूप में और चंद्रगुप्त तुम सपेरे के रूप में और अलका, तुम नटी के रूप में और सिंहरण नट के रूप में स्वांग रचेंगे। और पर्वतेश्वर की सेना का वह भाग जो अपनी अलग छावनी डाले हुए है, हम उसी के साथ रहेंगे, वहीं खेलेंगे।'' यह कहते वे लोग आगे बढ़ गए।

पंचनद नरेश पर्वतेश्वर की सेना अब युद्ध के मैदान में आ चुकी थी और स्वयं पर्वतेश्वर युद्धपूर्व अपनी सेना का निरीक्षण कर रहा था। तभी उन्होंने एक सैनिक से पूछा—''वह तो दूर एक अलग-सा शिविर है, वह किस का है?''

सैनिक ने महाराज को बताया कि शिविर मगध सेना का है।

''लेकिन मगध ने तो हमारे रण का निमंत्रण ही अस्वीकृत कर दिया था।''

''यह तो उस विशाल सेना का एक छोटा दल है महाराज! जो अपनी इच्छा से युद्ध में अपना योगदान देने आया है।''

पर्वतेश्वर को आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता हुई। पुराने मनुष्यों में इतना उत्साह। पर्वतेश्वर जिस युवक से संवाद कर रहे थे वास्तव में वह मगध नरेश नंद की बेटी कल्याणी थी जो आचार्य चाणक्य और चंद्रगुप्त के संकेत पर कुछ महत्वपूर्ण वीरों के साथ सेना की एक छोटी टुकड़ी को पर्वतेश्वर के सहयोग के लिए अपने बल-बूते पर ले आई थी। और महाराज उसे एक सैनिक समझ रहे थे। इसलिए पर्वतेश्वर ने उससे कहा, ''तुम युद्ध में हमारे साथ ही रहोगे सैनिक!'' और

सैनिक बनी कल्याणी 'जो आज्ञा' कहकर अपने काम में व्यस्त हो गई ।

दूसरी तरफ नाटक मंडली ने अपना चमत्कार मगध से आए इस गुल्म में दिखाना शुरू कर दिया । सिंहरण कहता फिर रहा था—

''खेल देख लो खेल, युद्ध में खेल और ऐसा खेल जो कभी न देखा, न सुना'' और फिर सिंहरण ने अपना डमरू बजाते हुए महाराज पर्वतेश्वर को घेरते हुए कहा—''देख लीजिए महाराज ! आप भी देख लीजिएगा, इस खेल से सैनिकों का मनोबल बढ़ाएंगे हम, आपकी विजय के लिए कामना करेंगे ।''

''लेकिन इस समय हमारे पास खेल देखने का समय नहीं है नट ।''

''अरे ! महाराज, आप तो युद्ध से पहले ही घबरा गये । हम तो आपके लिए इतना बड़ा स्वांग का मेला लेकर आए हैं और आप हमें खेल दिखाने का अवसर ही नहीं दे रहे ।''

चंद्रगुप्त ने अपने पिटारे को खोलकर दिखाते हुए कहा—''महाराज, लो नागों का ही दर्शन कर लो । एक से एक जहरीले सांप के दांत तोड़कर हमने उसे अपने पिंजरे में बंद कर दिया है और यदि आप चाहेंगे तो नंद जैसे सांप को भी हम विषहीन कर देंगे ।''

''आश्चर्य है तुम लोग नट होकर भी नागों पर इस प्रकार अधिकार कर लेते हो ।''

''महाराज ! भाले से तो बड़े-बड़े नाग वशीभूत हो जाते हैं ।''

''भाले से ?'' पर्वतेश्वर ने कहा, ''पर तुम लोग आ कहां से रहे हो ?''

''यवन सेना की ओर से ।''

''तुम गुप्तचर तो नहीं हो ?''

''महाराज ! गुप्तचरी भी करेंगे तो आपके लिए करेंगे, आखिर हम भारतीय हैं । आम्भीक की तरह मातृभूमि से विश्वासघात करने

वाले नहीं । हम तो आपसे यह कहने आए थे कि पिछली रात यवन सेना नदी पार करके इस ओर आ गई है । अब आप सचेत हो जाइए''

''हूँ ।'' तभी पर्वतेश्वर ने मगध सेना के नायक से कहा– ''इन लोगों को बंदी बना लो ।''

''बड़ी कृपा हुई महाराज आपकी । हमने आपके हित की बात की और आपने हमें यह फल दिया ।'' नटी बनी अलका ने कहा । और सपेरे के रूप में चंद्रगुप्त ने महाराज को सावधान करते हुए कहा–''इतनी बात हमारी और सुन लीजिएगा कि यवनों के युद्ध का तरीका आपसे भिन्न है । आप सावधान होकर अपनी सेना की व्यूहनीति बनाइए ।''

तभी कल्याणी बने सैनिक ने नट को अपने पास बुलाकर कहा–''चलो हमारे शिविर में चलो फिर आगे बात कर लेना ।'' और वह उन्हें अपने साथ ले आई । बोली,''क्या कहना चाहते हो ?''

चन्द्रगुप्त बने नट ने कहा–''मुझे लगता है कि इस युद्ध में पर्वतेश्वर की पराजय निश्चित है ।''

''तुम ऐसा कैसे कह सकते हो ? आखिर तुम हो कौन ?''

''क्यों मेरी बात से तुम्हारा काम नहीं चल रहा सैनिक ? तो सुनो मैं मगध का एक सपेरा हूँ ।''

''कहीं तुम चंद्रगुप्त तो नहीं ?''

तुम मुझे इस समय केवल एक सपेरा समझो राजकुमारी कल्याणी ।''

''तो हम दोनों ने एक दूसरे को पहचान लिया है । ठीक है, अब हमें योजना से काम करना होगा ।''

वे लोग सैनिक बनी कल्याणी के शिविर में थे और युद्धभूमि का दृश्य इस समय बिल्कुल उलट चुका था । पर्वतेश्वर को अपनी भूल अनुभव हुई । उसकी सेना में हाथियों ने ऊधम मचा दिया और रथी

सेना भी अस्त-व्यस्त हो गई । तभी सेनापति ने महाराज पर्वतेश्वर को यह समाचार दिया कि सिकंदर का घोड़ा मारा गया और राजकुमार के भाले की चोट नहीं संभाल सका । लेकिन इस समाचार से क्या होता है? सेना में तो भगदड़ मच गई थी । जबकि दूसरी ओर चंद्रगुप्त इस भगदड़ को देखकर बहुत दुःखी हो रहा था । आकाश में बादल छा रहे थे, यदि इस क्षण वर्षा हो गई तो रथ तो बेकार हो ही जाएंगे, हाथियों में भी भगदड़ मच जाएगी ।

यह सोचकर कल्याणी ने कहा–''हमें क्या करना चाहिए?''

''सामने जो पहाड़ी है, उस पर हमारी सेना एकत्र होनी चाहिए । शायद पर्वतेश्वर की पराजय टल जाए ।'' ये लोग मगध सेना को पहाड़ी पर ले जाने के लिए चल दिए । आकाश में बादल गड़गड़ाने लगे और धरती पर सैल्यूकस और पर्वतेश्वर आमने-सामने जूझ रहे थे । अकस्मात् एक वार से सैल्यूकस घायल हो जाता है और वह युद्ध से हट जाता है । सैल्यूकस को भागते देखकर महाराज पर्वतेश्वर कुछ घोषणा कर ही रहे थे कि तभी सिंहरण महाराज के पास आ जाता है और उनसे निवेदन करता है–''चलिए महाराज! उस सामने वाली पहाड़ी पर चलिए । यह स्थान सुरक्षित नहीं है ।''

''लेकिन तुम हो कौन?''

''एक मालव हो महाराज ।''

''अगर तुम्हें डर लग रहा है तो तुम जाकर छुप जाओ ।''

''महाराज! यवनों का दल सामने से आ रहा है ।''

''उसे आने दो मगर तुम हट जाओ ।''

अडिग पर्वतेश्वर सिंहरण की बात नहीं मानता और यवन सेना से टकरा जाता है । परिणामस्वरूप भीषण युद्ध होता है और पर्वतेश्वर घायल होकर लड़खड़ाते हुए हाथी से नीचे गिर पड़ता है । यवन सैनिक उन्हें घेर लेते हैं ।

पर्वतेश्वर को गिरता हुआ देखकर यूनान का सम्राट सिकंदर युद्ध बंद करने की घोषणा कर देता है ।

''यह एकतरफा घोषणा कैसे कर रहे हैं सम्राट । युद्ध तो अभी जारी है ।

''तुम चंद्रगुप्त !''

''हां सम्राट् ।''

''पर्वतेश्वर तो घायल हो गए हैं, अब मैं युद्ध किससे करूँ आज मेरे मन में न जीतने का उत्साह है न पराजय का क्लेश । युद्ध का जो समर्पित कौशल मैंने आज देखा है, मैं उससे स्तब्ध रह गया है । इसके बाद कुछ भी जीतने की आकांक्षा नहीं रही ।'' और फिर सम्राट् सिकंदर ने महाराज पर्वतेश्वर को संबोधित करते हुए कहा—''बोलो पर्वतेश्वर ! तुम इस समय हमारे बंदी हो किन्तु हम तुम्हारी अद्‌भुत वीरता के कायल हो गए हैं । बताओ, तुम्हारे साथ क्या व्यवहार किया जाए ?''

''जैसा एक राजा को दूसरे राजा के साथ करना चाहिए ।''

''मैं तुम्हारे युद्ध निपुण साहस की सराहना किये बिना नहीं रह सकता । तुम धन्य हो आर्यवीर । मैं तुमसे मित्रता करना चाहता हूँ ।''

''ठीक है सम्राट् ! तुमने युद्ध का आह्‌वान किया, मैंने युद्ध स्वीकार किया, तुम मैत्री का संदेश हो, मुझे मैत्री भी स्वीकार है ।''

चंद्रगुप्त ने यह सुना तो वह आश्चर्यचकित रह गया और बोला—''आप यह क्या कर रहे हैं पर्वतेश्वर ? क्या कहेंगे आचार्य चाणक्य ! मगध सेना आपकी प्रतीक्षा में है, युद्ध मत रोकिये ।''

''सुनो युवक ! वीरता अगर एक कला है तो संधि भी एक सुन्दर निर्णय है और मैंने सम्राट को वचन दे दिया है, अब यह उनका काम है कि वह अपनी बात पर दृढ़ रहते हैं या पीछे हटते हैं ।''

चंद्रगुप्त को पर्वतेश्वर का यह उत्तर सुनकर निराशा तो हुई

लेकिन फिर भी यह पराजय समर्पण की पराजय नहीं थीं, सम्मान की पराजय थी । चंद्रगुप्त इसके बाद कल्याणी के साथ वहाँ से लौट पड़ता है और सीधा आचार्य चाणक्य से सम्पर्क स्थापित करता है ।

''क्षमा करें आचार्य ! मैं आज ही तो विपाशा के तट से लौटा हूँ ।''

''मुझे मालूम है ।''

''और यवन शिविर में घूम कर आया हूँ ।''

''तो बताते क्यों नहीं वहाँ का समाचार ?''

''पर्वतेश्वर ने जल्दी हथियार डाल दिये ।''

''सिकन्दर की सेना ने विपाशा नदी को पार करने से साफ इन्कार कर दिया । सिकंदर के लाख कहने पर भी वे तैयार नहीं हुए । अब तो वे रावी के जलमार्ग से लौटने का निश्चय कर चुके हैं । हे आचार्य ! आपकी कृपा से अब सिकंदर अपनी सेना में अकेला पड़ गया है । वह किसी भी प्रकार सेना को और आगे चलने के लिए तैयार नहीं कर सका ।''

''देखो चंद्रगुप्त ! मालवों को अपने में मिलाने का हमने पूरा प्रयत्न कर लिया है, सिंहरण की केवल प्रतीक्षा है ।''

जबकि सिंहरण अभी भी बंदीगृह में घायल अवस्था में पड़ा हुआ था । यहीं उसे यह संदेश मिला कि सिकंदर की सेना पर्वतेश्वर से संधि के बाद रावी पार कर रही है । किसी प्रसंगवश महाराज के आदेश से सिंहरण मुक्त होकर मालव के लिए चल पड़ा । वहाँ उसके पहुँचने पर युद्ध परीक्षक ने उसे मालव सेना का सेनापति नियुक्त किया । और उसने समस्त परिषद् के सामने आचार्य चाणक्य को राजनीति का उपदेश देने के लिए आमंत्रित किया । व्यासपीठ से आचार्य चाणक्य ने अपना वक्तव्य देते हुए कहा–

''उत्तरापथ के प्रमुख गणतंत्र मालव परिषद् का मैं आभार

मानता हूँ कि उन्होंने यहाँ अपनी बात कहने के लिए आमंत्रित किया। मुझे केवल इतना कहना है कि युद्धकाल में एक नायक की आज्ञा माननी पड़ती है, इसलिए यदि आप सबको यह स्वीकार है तो चंद्रगुप्त को समस्त सेना का नायक स्वीकार करते हुए उसके नायकत्व में यवनों का सामना करना चाहिए और यदि आप इसका प्रतिरोध करेंगे तो यह ध्यान रहे, प्रश्न शासन का नहीं युद्ध का है। इस समय शासन से पहले युद्ध को जीतना आवश्यक है, शासन की बारी उसके बाद आएगी। यदि स्वतंत्रता ही नहीं रही तो शासन का प्रश्न ही कहाँ रह जाएगा?''

आचार्य चाणक्य के बाद सभी गणों ने इस निर्णय को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया और स्त्रियों की ओर से मालविका को प्रधान नियुक्त किया गया। अब ये लोग यवन सेना का सामना करने के लिए पूरी तरह से तैयार थे।

रावी के किनारे अभी दूर-दूर तक यवनों की सेना को कोई अता-पता नहीं था लेकिन रावी के उस पार कुछ भारतीय सैनिक अवश्य दिखाई दे रहे थे। इनके पक्ष में मगध सैनिक और क्षुद्रक अपनी घात में तैयार थे कि कब यवन सैनिक आएं और उन पर आक्रमण किया जाए। इधर चंद्रगुप्त की योजना थी कि यवन सैनिकों को उलझाने के लिए उनकी जल सेना पर आक्रमण कर दिया जाए। इससे कम से कम उनकी युद्ध सामग्री ही नष्ट होगी। यह आदेश पाकर सिंहरण नावों को बढ़ने का संकेत दे देता है तभी एक नाव से अलका को वह उतरते देखकर प्रसन्न्ता में उसके समीप चला जाता है। सिंहरण भावावेश में अलका को अपने अंक में ले लेता है और प्रश्न करता है–''तुम यहाँ कैसे?''

''पर्वतेश्वर ने अपनी शर्त तोड़ दी सिंहरण, तो फिर मैं त्याग किस बात के लिए करती। वह सिकंदर को दिए वचन के अनुसार उसी

के आदेश पर रावी के किनारे सैनिकों के साथ पहुँच गया है । इसलिए मैं जानबूझकर पर्वतेश्वर को छोड़कर यहां आ गई हूँ ।''

तभी चंद्रगुप्त ने कहा–''देवी ! यह युद्धकाल है । नियमानुसार तुम उपवन में चली जाओ ।'' और मालविका के साथ अलका उपवन में चली गई ।

शिविर के समीप ही आचार्य चाणक्य भ्रमण कर रहे थे तभी कल्याणी उधर आ निकली–''मैं आपको ही ढूंढ रही थी आचार्य ! सिकंदर ने अपने आक्रमण की सीमा विपाशा को बना लिया है । अब वह आगे नहीं बढ़ेगा, अतः आप मुझे मगध लौटने की आज्ञा दें । आर्य राक्षस भी आए हैं, मैं समझती हूँ मेरा उनके साथ ही लौट जाना सही रहेगा ।''

''तो फिर चंद्रगुप्त से क्या कहा जाएगा ?''

''मैं इस बारे में क्या कहूँ आचार्य !''

''तुम्हें यहाँ न पाकर उसका हृदय कितना दुःखी होगा, क्या तुम कल्पना कर सकती हो कल्याणी ?''

''लेकिन लौटना तो है ही आचार्य !''

''यह तुम कह रहे हो राक्षस, जो मगध का अमात्य होने का गौरव रखता है । तुम मगध की रक्षा मगध में ही करने का निश्चय कर चुके हो । ठीक है, मैं क्षुद्रकों से कह देता हूँ कि वे मार्ग से हट जाएं ताकि सिकंदर को विपाशा पार करने में कोई कठिनाई न पड़े ।''

''नही, आचार्य इसके लिए तो मैं स्वयं रुकने के लिए तैयार हूँ । परन्तु .....''

''देखो अमात्य राक्षस ! यदि सिकंदर रावी के किनारे पहुँच गया तो तुम्हारी सेना की आवश्यकता पड़ेगी । और यह ध्यान रखो, नंद ने मेरा अपमान किया है मगध ने नहीं, मैं उसकी प्रतिष्ठा यवनों के हाथों जाने नहीं दूँगा ।''

अभी ये लोग बातें कर रहे थे कि सूचना मिलती है–''सिंह पिंजड़े में बंद हो गया है। सिकंदर की जल यात्रा में इतना बड़ा आक्रमण उस पर बोल दिया गया कि वह स्थल मार्ग से आक्रमण के लिए बाध्य हो गया। अब वह मालव पर स्थल मार्ग से आ सकेगा।'' यह सुनकर चाणक्य ने कहा–''सुनो राक्षस! तुम अपनी सेना लेकर विपाशा के मार्ग पर अवरोध पैदा करो। क्षुद्रकों को लेकर मैं पीछे से आता हूँ।'' और चाणक्य के आदेशानुसार राक्षस विपाशा की ओर जाने के लिए तैयार हो गया तभी चाणक्य ने टोकते हुए कहा–

''सुनो राक्षस! यह भी सुनते जाओ, नंद को अपनी प्रेयसी सुवासिनी के साथ तुम्हारे अनुचित संबंधों के बारे में ज्ञात हो चुका है। अतः अभी तुम्हारा मगध जाना उचित नहीं होगा।''

इधर अलका चन्द्रगुप्त का बड़ी बेचैनी से इंतजार कर रही थी। चन्द्रगुप्त अभी नहीं आया था, इसीलिए वह हर आहट पर बाहर झांक आती थी। अचानक उसकी ओर कुछ यवन सैनिकों का अत्याचार बढ़ता दिखाई देता है, क्षण भर के लिए वह घबरा जाती है क्योंकि वह अकेली कैसे इस आक्रमण को रोक पाएगी लेकिन वह भी तो एक क्षत्राणी है और वह वीर कन्या है। यह विचार आते ही वह प्राणपण से अपने साथ जो थोड़े-बहुत सैनिक होते हैं, उन्हीं को आदेश देकर आक्रमण को रोकती है। मालव दुर्ग के इस भीतरी प्रकोष्ठ में यह आक्रमण अवश्य किसी भेदिए का संकेत है। लेकिन इस समय उनके पास यह सोचने का समय नहीं है।

वह अपने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर घात का प्रत्युत्तर देती है। एक, दो, तीन क्रम से कई सैनिक मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। तभी सिकंदर स्वयं परकोटे पर चढ़कर ऊपर आ जाता है। वह अलका के तीर का वार बचाकर दुर्ग में कूद पड़ता है। अलका फिर उस पर बाण

साधती है । इससे पहले कि सिकंदर अलका को पकड़कर उसे अपने काबू में ले, सिंहरण जो पीछे था, यवन सैनिकों की नीयत भांपकर उनका पीछा करते हुए यहाँ तक आ गया था, अपनी तलवार से वार करता हुआ परकोटे में कूद पड़ता है और वहीं से चिल्लाकर कहता है—''सम्राट् सिकंदर! तुमने स्वयं इतना साहस क्यों किया? तुम्हारे प्राणों का तो मूल्य कहीं अधिक है ।''

सिकंदर जो उठ कर संभल चुका था, उसने उत्तर देते हुए कहा—''वीर सिकंदर केवल आदेश देने वाला सम्राट् नहीं है, आवश्यकता पड़ने पर वह स्वयं सैनिक की भाँति जान जोखिम में डालने का अभ्यस्त है ।'' यह कहते हुए एक तेज भाला उसकी ओर फेंक देता है । सिंहरण अपनी ढाल से उसे बेकार करते हुए तलवार के वार से सिकंदर को निहत्था कर देता है ।

क्या अज़ीब इत्तफ़ाक है । इतनी विराट सेना का स्वामी आज मालव के प्रकोष्ठ में नितांत अकेला एक बंदी के रूप में असहाय और घायल शत्रु की कृपा के लिए याचना की मुद्रा में आ जाता है । तभी पीछे से मालव सैनिकों का बड़ा दल आवाज़ करते हुए सिंहरण को आदेशसूचक शब्दों में कहता है—''दया नहीं सेनापति! बदला । इस आक्रांता ने अकारण ही हमारी शांति भंग करते हुए निरीह जनता का वध किया है । हमें बदला लेना है ।''

''ठहरो वीरो! किसी को प्राण का दान देना भी उसके अहंकार को नीचे गिराकर उसके मस्तक को झुका देना भी एक बदला ही है ।'' फिर सिकंदर से—''जाओ सम्राट्! पर्वतेश्वर के प्रति तुम्हारी उदारता का यह प्रत्युत्तर है । हम भारतवासी कृतज्ञता तो अनुभव करते हैं लेकिन किसी का अहसान बकाया नहीं रखते ।'' धीरे-धीरे सिकंदर

उठते हुए दो यवन सैनिकों का सहारा लेकर वहाँ से चुपचाप निकल जाता है ।

अभी सिकंदर गया ही था कि एक घबराया सैनिक उसे आकर यह सूचना देता है कि सेनापति सैल्यूकस को चंद्रगुप्त की सेना ने पीछे से घेर लिया है और उन्हें बाध्य होकर अपने आपको पीछे लौटना पड़ा । सिकंदर के लिए अब इस पराजय का भी कोई अर्थ नहीं रह गया था । वस्तुतः मुनि दांडायन के यहाँ जब से यह चाणक्य से मिलकर लौटा और राष्ट्र के प्रति उसकी दृष्टि को पहचाना, साथ-साथ पर्वतेश्वर और मालव के लोगों का व्यवहार समीप से जाना, सिकंदर के विश्व-विजय का स्वप्न उसे अर्थहीन लगने लगा । अब वह स्वयं भी यह चाहने लगा था कि अब बहुत हो चुका, अब यहाँ से वापसी की तैयारी करनी चाहिए । और धीरे-धीरे सिकंदर इसी प्रकार विचार करता हुआ अपने शिविर में लौट गया ।

8. सिकन्दर की वापसी

विपाशा नदी की शीतल लहर मंद-मंद गति से कलकल नाद करती हुई आगे बढ़ रही थी । इसके सुरम्य-शांत किनारे पर भारतीय सैनिकों का विशाल शिविर लगा हुआ था और इस शिविर का गणनायक राक्षस शिविर के बाहर नदी के किनारे एकांत में टहल रहा था । इस समय वह अकेला था । उसे याद आया कि एक दिन नंद की राजसभा में आचार्य चाणक्य ने उन्हें कितने धैर्य से यह समझाने का प्रयास किया था कि राजन् ! यवन आक्रमणकारी हैं । वे ब्राह्मणों और बौद्धों में भेद नहीं मानेंगे इसलिए ब्राह्मणत्व का पालन करते हुए हमें शस्त्र और शास्त्र दोनों में पारंगत होना चाहिए लेकिन अहंकारी राजा ने शांत बौद्धों के विचार को महत्व देते हुए ब्राह्मण का प्रस्ताव ठुकरा दिया था और यही नहीं, भरी सभा में उसे अपमानित करके सैनिकों द्वारा उसकी शिक्षा का उपहास करते हुए खींचकर सभा भवन से बाहर करा दिया था ।

लेकिन आज चाणक्य की एक-एक भविष्यवाणी, उनकी एक-एक चिन्ता और एक-एक कथन बिल्कुल सही उतरे हैं । कितना बड़ा साहस किया चाणक्य ने, कितनी आगामी योजनाओं को सोचने की शक्ति है उनमें और कितने बड़े संकट का पूर्वाभास कर लिया था इन्होंने । वाह मगधनरेश नंद ! तुम तो कितने मूर्ख हो । तुमने अपने ही राज्य के एक हितचिंतक को समझने में इतनी बड़ी भूल की । अभी यह सोच ही रहा था कि दुष्ट नंद के भेजे चाकरों ने उसके सम्मुख मगध सम्राट् का आज्ञापत्र प्रस्तुत कर दिया ।

यह क्या ? मेरे राष्ट्रधर्म की प्रतिपालन का यह पुरस्कार । मुझे बंदी बनाने का आदेश ! वाह महाराज नंद ! क्या आदेश है । मैंने मगध की रक्षा में अपना जीवन दांव पर लगाया । लेकिन यह राजसेवा

कितनी कुटिल और विश्वासघाती है और फिर अपने आप में बड़बड़ाते हुए–''पराजय हो जाती मगध की, मर जाती, कट जाती प्रजा, उतर जाते नंद राजगद्दी से और स्वयं बंदी हो जाते, मारे जाते एक पशु की तरह लेकिन मैंने तो अपने नागरिक होने का धर्म निभाया ।''

आए हुए सैनिकों के नायक ने आदेश दिया---बांध लो अमात्य राक्षस को, और आज्ञा के अनुसार ले चलो महाराज नंद के सम्मुख ।''

सैनिक राक्षस की ओर बढ़े लेकिन पहले ही उनके पीछे से एक आवाज उभरती है–''ठहरो, इस साहसपूर्ण दुष्कृत्य से पहले देखो, तुम्हारे प्रतिरोध में हम भी खड़े हैं । मालव और क्षुद्रक अभी मरे नहीं ।''

तभी राक्षस ने उनसे कहा–''आप कौन हैं ?''

आचार्य चाणक्य के भेजे हुए आपके जीवनरक्षक अमात्य ! चाणक्य ने हमें आदेश दिया है कि जब तक यवनों का उपद्रव पूरी तरह शांत नहीं हो जाता तब तक हमें अपने अत्याचारों के सभी नायकों, सैनिकों आदि की रक्षा करनी है और हां अमात्य ! आपको आचार्य चाणक्य ने याद किया है । यह पत्र आपके लिए है ।''

आश्चर्य से–''मेरे लिए पत्र ! क्या समाचार है ?''

''आप स्वयं देख लें !''

राक्षस पत्र को खोलकर पढ़ते हुए चाणक्य की बुद्धि का लोहा मान बैठता है । अलका का सिंहरण से विवाह हो रहा है और उसमें आचार्य ने राक्षस को भी सम्मानपूर्वक निमंत्रण दिया है ।

मुस्कराते हुए, ''क्या प्रखर प्रतिभा है आचार्य की ! कैसा खिलवाड़ करते हैं वे कूटनीति से !''

चाणक्य के भेजे गये सैनिकों ने नंद के सैनिकों को बंदी बनाकर उपनायक द्वारा बंदीगृह भिजवा दिया और नायक स्वयं राक्षस को साथ लेकर चाणक्य की सेवा में उपस्थित होने चल दिया । नायक के मार्ग में

ही राक्षस को यह समाचार दिया कि पराजय के बाद यवनों ने मालवों से सन्धि करने का प्रस्ताव भेजा है और सिकंदर ने उस वीर बालिका को देखने की इच्छा प्रकट की है, जिसने दुर्ग में सिकंदर को अपनी जान पर खेलकर रोका था ।''

''हां आर्य अमात्य ! यह तो मैं बताना भूल ही गया कि इस अवसर पर स्वयं सम्राट् सिकंदर भी उपस्थित होंगे ।''

यह सुनकर बरबस ही राक्षस के मुंह से निकल पड़ा—''तुम धन्य हो चाणक्य ! वास्तव में तुम धन्य हो । अद्‌भुत मस्तिष्क पाया है तुमने । कैसी गोटियां चलते हो कि सामने वाला धराशायी होकर रह जाता है ।

''जिस सिकंदर के बल से आतंकित होकर गांधारराज के पुत्र आम्भीक ने कायरतापूर्ण समर्पण कर दिया, पर्वतेश्वर की सेना बिखर गई और वह निरुपाय संधि के लिए बाध्य हुआ, सिकंदर को मालव प्रदेश में तुमने ऐसी पटखनी दी कि वह भारत विजय के संकल्प को त्यागकर वापिस लौटने का संकल्प बनाता दिखाई दिया ।

''भला नंद ऐसे कुशल और ज्ञानी विचार पुरुष की समझ को कैसे पचा पाता । तुम धन्य हो चाणक्य ।'' धीरे-धीरे ये लोग चलते गए और आचार्य चाणक्य के समीप पहुँच गये । वहीं राक्षस को महाराज नंद की पुत्री राजकुमारी कल्याणी भी मिली । अभी वे वहाँ पहुँचे ही थे कि राजकुमारी ने राक्षस को देखकर कहा, ''देखा अमात्य राक्षस ! कितना विराट दृश्य था । कोई कल्पना कर सकता है । इस संयोजन की ? पता नहीं मगध को किस बात का डर है ?''

''तुम भूल रही हो राजकुमारी । सेनापति चंद्रगुप्त और आचार्य चाणक्य मगध की ही प्रजा है, जिन्होंने इस विराट दृश्य को सफल रूप से मंचित करते हुए हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है । क्या मगध को इस बात पर गर्व नहीं होगा ?''

''तो क्या तुम यह हृदय से स्वीकार करते हो अमात्य !''

''कृपया अधिक लज्जित न करें आचार्य चाणक्य! मैं पहले ही अपने दुष्कृत्यों के प्रति सिर झुकाए आपके सम्मुख नतमस्तक हूँ।''

यहाँ से चलकर चाणक्य तेजी से उत्तरापथ की ओर बढ़ जाते हैं। यहाँ का दृश्य भी अपने आप में बड़ा जटिल बनता जा रहा है। रावी के किनारे पर सिकंदर की वापसी के लिए शिविर का निर्माण किया जा रहा है। यहाँ एक बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाएगा और इसका आयोजन पंचनद नरेश पर्वतेश्वर कर रहे हैं। लेकिन मन में एक गहरी उथल-पुथल है। जिसका मस्तक सदैव ऊँचा रहा, वही सम्राट् सिकंदर के सामने तिरस्कृत हुआ और वह भी एक स्त्री के द्वारा। अब जीवन का अर्थ क्या रह गया? अलका-सिंहरण वर और वधू बन गए। वह अलका किस चालाकी से सिंहरण को मेरे बंदीगृह से मुक्त कर ले गई और मार्ग में मुझे भी गचका दे गई। सबसे अधिक कष्ट की बात तो यह है कि स्वयं सम्राट सिकंदर उसकी प्रशंसा करते नहीं थक रहा। इस अपमान का बदला दो ही तरह से लिया जा सकता है या तो सिंहरण को मौत के घाट उतार दूं या फिर स्वयं आत्मघात कर लूं। और फिर एकदम भावावेश में आकर पर्वतेश्वर ने अपने कूल्हे से छुरा निकालकर अपने पेट में घोंपने के लिए इरादा बना लिया।

''अरे! यह क्या कर रहे हो?'' और यह कहते ही चाणक्य ने अक्समात वहाँ पहुँचकर पर्वतेश्वर का हाथ पकड़ लिया।

''मुझे छोड़ दो चाणक्य! अब मेरे पास किसी को देने के लिए कुछ नहीं है।''

''पहले छुरा छोड़ो।''

''आखिर तुम चाहते क्या हो?''

''मैंने अपना राज्य दिया प्रतिष्ठा दी।''

''लेकिन तुमने स्वयं दिया। मैंने नहीं मांगा था महाराज पुरु।''

''तो फिर अब क्या चाहते हो? क्यों रोकना चाहते हो मुझे मरने से?''

केवल एक प्रश्न कर रहा हूँ तुमसे और तुम्हें इसका उत्तर देना होगा।''

''तुम भी तो अपमानित करना चाहते हो? मैं मान गया हूँ कि तुमने जो प्रस्ताव किया था और जो संकट पहचाना था और जिसके लिए तुमने मेरी सहायता मांगी थी, वह मेरा अपने जीवन का सबसे बड़ा अपराध था कि मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी। तुम सच कह रहे थे आचार्य! इसलिये अब अपने प्राण त्यागकर मैं उस भूल का प्रायश्चित करना चाहता हूँ।''

''लेकिन यह तो तुम्हें ही बताना पड़ेगा पुरु! कि चंद्रगुप्त को तुम क्षत्रिय मानते हो या नहीं और क्या सेनापति पद पर प्रतिष्ठित करके मैंने कोई भूल की?''

''मुझ पर व्यंग्यबाणों की वर्षा मत करो चाणक्य! मैं तुम्हारे सामने नतमस्तक हूँ और यह जो विराट आयोजन इस नदी के तट पर हो रहा है, क्या चंद्रगुप्त के क्षत्रियत्व का इससे बड़ा कोई और प्रमाण हो सकता है कि मैं पंचनद का राजा समर्थ होते हुए भी जो कार्य नहीं कर सका, वह सेनाविहीन लेकिन दिव्यदृष्टि चाणक्य की सहायता से चंद्रगुप्त ने कर दिखाया। हे आचार्य! अब मैं आश्वस्त हृदय से कह सकता हूँ कि चंद्रगुप्त में एकछत्र सम्राट् होने के गुण विद्यमान हैं। अब तो मुझे अपने जीवन से मुक्त होने दो।''

''पुरु तुम कायर तो नहीं हो क्योंकि अगर होते तो आम्भीक की तरह म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लेते और आर्यावर्त की प्रतिष्ठा को गिरवी रख देते लेकिन तुमने अपनी मर्यादा के लिए युद्ध करना स्वीकार किया, इसलिये तुम वीर हो।''

''और सुनो! यह भी ध्यानपूर्वक सुन लो कि ब्राह्मण राज्य करता नहीं कराता है। वह राजा को बनाता है। उस नीति का निर्माण

करता है जिस पर चल कर राजा और राज्य दोनों ही सुखी होते हैं। इसलिए तुम अभी राज्य से मुक्त नहीं हो सकते। इसे मेरा आदेश मानो या निर्णय, तुम्हें और राज्य करना है पुरु! और वह कार्य तो भारतीयों के लिए गौरव प्रदान करता है, तुम्हें वह भी करना शेष है।''

''मुझे? ऐसा कौन-सा काम है जो गौरवशाली है और मुझे करना शेष है?'' अचानक आश्चर्यचकित होकर पुरु अपने हाथ का छुरा फेंक देता है और चाणक्य से पूछता है—''बताओ आचार्य! क्या कार्य है?''

''जिन यवनों ने तुम्हें परास्त करके इस तरह अपमानित किया है, उनसे अपमान का बदला लेना है?''

''लेकिन....''

''अब और लेकिन-वेकिन नहीं''

''तो फिर मेरे लिये क्या आदेश है?''

''फिलहाल तुम सिंहरण को अपना भाई मानकर उसके विवाह को स्वीकृति देते हुए उन्हें आशीर्वाद दो। और अलका को अपनी बहन समझो।''

''अलका! कहाँ है अलका?'' अलका का नाम सुनकर उसका बूढ़ा पिता गांधारराज तेज कदम बढ़ाते हुए उनके पास आया और पूछने लगा—''पर्वतेश्वर यह चाणक्य दोनों में से कोई भी उस समय उसे नहीं पहचानते।''

तो पर्वतेश्वर ने चौंककर कहा—''तुम अलका के बारे में क्यों पूछ रहे हो? और तुम हो कौन जो इस समय यहाँ इस तरह आये हो?''

तब तक चाणक्य गौर से देखने पर उस वृद्ध को पहचान गये थे, इसलिए उन्होंने पर्वतेश्वर से कहा, ''राजन्! मैं इन्हें पहचान गया हूँ। यह दुर्भाग्यशाली गांधार नरेश हैं।'' यह सुनकर तो पर्वतेश्वर झुक

गया और उन्हें प्रणाम करते हुए सहारा देते हुए उपयुक्त स्थान पर बैठाया ।

गांधार नरेश पर्वतेश्वर के इस सम्मान को पाकर पुलकित हो उठे लेकिन निराशा के स्वर में बोले–तुमने मेरा आदर किया, तुम्हारा आभारी हूँ । मेरी संतान ने समूचे आर्यावर्त का बड़ा अनिष्ट किया है ।''

चाणक्य ने बीच में रोक कर कहा–''केवल आम्भीक कहो गांधारराज ! क्योंकि उसने तुम्हें लज्जित किया है लेकिन तुम्हारी पुत्री अलका ने तो देश के गौरव में अपना सब कुछ होम करने का बीड़ा उठा लिया था । वह तो एक चिंगारी बन कर आई थी ।''

''चलिए आचार्य ! आओ पर्वतेश्वर ! तुम भी आओ ।'' और ये लोग उस स्थान पर चले जाते हैं जहां अलका और सिंहरण वर-वधू के रूप में उपस्थिति थे ।

सिंहरण और अलका का यह मिलन सभी के लिए सुख देने वाला समाचार था लेकिन इसके साथ-साथ धीरे-धीरे एक और संबंध प्रगाढ़ता की और बढ़ रहा था, वह था चंद्रगुप्त और कार्नेलिया का ।

''क्या सोच रहे हो पुरु ? मैंने जो कुछ किया, अच्छा था या बुरा, यह तुम्हारी समझ में स्वयं आ जाएगा । यह जो रावी का तट है और सामने वापिस लौटने के लिए सिकंदर का बेड़ा तैयार है । एक आक्रांता द्वारा पैदा की गई अशांति का ज्वार आज थम जाएगा पुरु । आज थम जाएगा ।

''मैं अपने पिछले काम पर शर्मिंदा हूँ आचार्य ! आज मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करते हुए हृदय से प्रस्तुत हूँ ।''

''तो चलो पर्वतेश्वर ! आज यवनों को विदा करके फिर इस पर योजनाबद्ध तरीके से विचार करते हुए आगे बढ़ेंगे । '' और इस तरह बात करते हुए वे सब रावी के तट पर पहुँच गए ।

यहाँ का दृश्य बड़ा भावुक हो रहा था । सिकंदर, सैल्यूकश, कार्नेलिया और फिलिप्स यवन सैनिकों के जमवाड़े के साथ सिंहरण, अलका, मालविका और आम्भीक भी विदाई समारोह में उपस्थित थे । गाजे-बाजे के साथ सिकंदर महान् को भारतीय प्रसन्नतापूर्वक विदा कर रहे थे ।

तभी आगे बढ़ते हुए सिकंदर ने चंद्रगुप्त को देख कर कहा–

''बधाई हो चंद्रगुप्त !''

''मुझे किस बात की बधाई सम्राट् ?''

''यह बधाई भारत के सम्राट् चंद्रगुप्त को दे रहा हूँ क्योंकि जब तुम सम्राट् होओगे, तब यहाँ मैं तो होऊँगा नहीं, इसलिए तुम्हें तुम्हारे राजा होने की अग्रिम बधाई दे रहा हूँ ।''

''सिकंदर, तुम वास्तव में वीर हो, गुणी हो और कुलीन हो । हम भारतीय सदा गुण की पूजा करते हैं । मैं चाणक्य इन सब की ओर से तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ कि तुम आए और हमें मैत्री का अवसर दिया ।''

अपनी नाव में चढ़ता हुआ सिकंदर धीरे-धीरे नदी के रास्ते में बढ़ता हुआ दूर जाता हुआ एक परछाई की तरह नजर आ रहा था । वैसे उसका आना और आक्रमण करना भी तो एक सच्चाई थी । इतना सम्मान उसे भारत में मिला । सिकंदर को लग रहा था कि जो अमिट खजाना उसे भारतीयों से मिला वह कभी समाप्त नहीं होगा ।

9. नंद राज्य की समाप्ति

चाणक्य के सामने अब एक ही लक्ष्य शेष था.... मगध का उद्धार। वह पिछले कई वर्षों से निरंतर इसी मार्ग पर बढ़ता हुआ यहाँ तक आ गया, पीछे मुड़ कर नहीं देखा। कितने ही पड़ाव आये, मादक गंधों वाले पुष्प गुच्छ उसे भेंट हुए लेकिन उसके सामने तो कांटों भरा लक्ष्य था। फूलों की गंध में वह स्वयं को कैसे उलझा सकता था? सुवासिनी ऐसी ही एक गंध थी। कितनी दूर चली गई सुवासिनी। अभी भी चाणक्य मगध के विषय में ही विचारमग्न थे। उनकी दृष्टि में केवल नंद है, मगध का राजसिंहासन है, पिता चणी, महामात्य शकटार और सेनापति मौर्य के प्रति किया गया अत्याचार है और अधिकारों के लिए रिरियाती लेकिन आतंक में मौन जनता की कतार आँखों का सन्नाटा है। इनके बीच में कभी-कभी चाणक्य को सुवासिनी का चेहरा भी झलक उठता है लेकिन वह उसका लक्ष्य नहीं और अब तो उपलक्ष्य भी नहीं। चंद्रगुप्त बिना आहट किये आचार्य के पास आकर बैठ जाता है। और मंत्रमुग्ध सा देखता रहता है, आचार्य के चेहरे की बदलती भंगिमा को।

''अरे सम्राट् तुम!''

चंद्रगुप्त चरण छूते हुए क्षमायाचना की मुद्रा में आचार्य से कहता है– ''आचार्य! क्या मुझसे कोई भूल हो गई?''

''क्यों? तुमने कैसे जाना?''

''एक ही रात में संबोधन चंद्रगुप्त से सम्राट की ऊंचाई तक चढ़ गया? एक पिता के सम्मुख पुत्र इतना बढ़ गया कि पिता अपने पुत्र को ही पुत्र संबोधित नहीं कर पा रहा है।''

हल्के से मुस्कुराते हुए चाणक्य ने कहा–''ऐसा नहीं है वत्स! मैं तो कल के लिए अपने आपको तैयार कर रहा था क्योंकि तुम आर्यावर्त

के सम्राट होने जा रहे हो और नीति यह कहती है कि सम्राट पहले सम्राट् होता है बाद में शिष्य, पुत्र अथवा पति ।''

मैं तो भूल गया आचार्य ! पर्वतेश्वर भी आए हैं ।''

''अरे भाई तो उनको बुलाओ !''

और शायद पर्वतेश्वर के कानों तक यह आवाज़ पहुँच गई थी, वह स्वयं ही आचार्य के सम्मुख आ गए ।

''आइए पर्वतेश्वर !''

''मैं आपके सम्मुख सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ आचार्य चाणक्य !''

''तो तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा याद है ?''

''जो व्यक्ति अपनी शत्रुता को याद रख सकता है, वह अपनी प्रतिज्ञा भी नहीं भूलता आचार्य !''

''तो फिर तुम्हें मेरे साथ चलना होगा । सिंहरण मालव गणराज्य का एक नागरिक है । मुझमें जितनी शक्ति है, उतना प्रयत्न मैं कर सकता हूँ ।''

''मालव कृतघ्न नहीं होते आचार्य !'' अचानक सिंहरण ने आचार्य के सम्मुख आते हुए अपनी बात पूरी की । ''मेरे प्राण भी चंद्रगुप्त के लिये, मगध के लिये अर्पित हैं ।''

''सिंहरण ! मैं भी तुमसे पीछे नहीं हूँ । अपने अहंकार की चपेट में आकर सम्राट् सिंकदर से युद्ध में तिरस्कृत होकर जो दंश मैंने झेला है, अब मैं उससे उबर गया हूँ ।''

''मुझे तुम्हारा विश्वास है पुरु !'' आचार्य चाणक्य ने कहा ।

''इस शरीर में या धन में मेरी कोई आसक्ति या आस्था नहीं रह गई । मेरा सारा कोष आपकी सेवा में उपस्थित है ।''

''मैं भी आपसे अनुग्रहित हुआ आर्य पर्वतेश्वर !'' चंद्रगुप्त ने कहा, ''मित्रता को कृतघ्नता का भाव देकर मैं छोटा नहीं करना चाहता । चंद्रगुप्त आपका सदा साथी रहेगा ।''

''लेकिन वत्स चंद्रगुप्त ! अभी जो मगध से समाचार मिला है, वह बड़ा भयानक है ।''

''आप क्या कह रहे हैं ? और फिर भी मुझे मगध जाने से अभी आप रोक रहे हैं ।''

''यह प्रश्न समय पर करना वत्स ! पहले इस पत्र को पढ़ो ।''

पत्र पढ़कर चंद्रगुप्त के सामने सारा दृश्य स्पष्ट हो जाता है ।

''इसका मतलब अभिप्राय यह हुआ कि फिलिप का मन अभी शांत नहीं हुआ, वह युद्ध करना चाहता है । ठीक है, आप निश्चिंत रहें आचार्य ! आपका यह शिष्य आपके आदेश का पालन करने के लिए और फिलिप को उसकी वास्तविक स्थिति समझाने के लिए अभी मगध नहीं जाएगा क्योंकि उत्तरापथ के आकाश से दासता की सम्भावना के काले बादल अभी फिलिप के रूप में शेष हैं ।

चाणक्य मुस्कराते हुए कहते हैं—''तुम उसके लिए उपयुक्त सूर्य के समान समर्थ हो और सुनो पुरु ! यवनों से तुम्हारा संघर्ष फिर हो यह मैं नहीं चाहता क्योंकि यहाँ रहने से संदेह तुम पर ही होगा, इसलिए तुम मगध चलो । और वत्स सिंहरण ! तुम्हें ही यह यवन विद्रोह शांत करना होगा ।''

मगध में नंद की रंगशाला का अब भी वही रूप था । उत्तरापथ में युद्ध की विभीषिका का जो रंक्तरंजित दृश्य सिकंदर के आक्रमण से उपस्थित हो गया था, मगध में उसका लेशमात्र भी प्रभाव दिखाई नहीं पड़ रहा था । नंद तो अभी भी दो घड़ी चैन से बैठने का अवकाश पाना चाहता था और इसीलिए वह सुवासिनी को ढूंढता हुआ उसके कक्ष तक पहुँच गया ।

''आइए देव !''

''सुवासिनी ! इस समय तो मैं तुम्हारी छाया में दो क्षण का आराम करने आया हूँ ।''

''कहिए, क्या आज्ञा है, क्या अभिनय देखने की इच्छा है ?''

''नहीं सुवासिनी ! अभिनय नहीं ! तुम्हारे आंचल के तले मैं दो घड़ी का सौंदर्य मिश्रित सुख प्राप्त करने आया हूँ । अभिनय तो नित्य देखता हूँ । चारों तरफ छल और विद्रोह देखते देखते ये आंखें जलने लगी हैं । मेरा अपनी ही सेनापति मौर्य, जिस पर मुझे विश्वास था, अपने विद्रोही पुत्र को मेरे बंदीगृह में रहकर सहायता पहुँचा रहा था, आज मैंने उसे अंधकूप की सजा दी है कि वह कभी सूर्य के दर्शन ही न कर सके । मेरा मन इस निर्णय के बाद किसी अदृश्य भय से कांप उठा है ।''

सुवासिनी पल भर को सोचने लगी, ''यह कंपन तुम्हारे अंत का संकेत है, दुष्ट अधिपति !''

''क्यों, तुम मौन क्यों हो गई ?

''आपके हृदय के कंपन पर सोच रही थी कि किस तरह उसको सांत्वना दी जाए ।''

''मैं नहीं जानता सुवासिनी ! कि मैंने न्याय किया है या अन्याय पर एक संदेह अवश्य पैदा हो गया है । मैं किस पर विश्वास करूँ ?''

''अपने परिवार के लोगों पर तो आप विश्वास कर ही सकते हैं । और आप चाहें तो मेरी निष्ठा पर विश्वास कर सकते हैं ।

''अमात्य राक्षस भी तो नहीं आया सुवासिनी ?''

''तो फिर आसव लाऊँ महाराज ।''

सुरा पात्र नंद के हाथों में थमाते हुए उसने वीणा पर बैठकर एक गीत की झंकार छेड़ दी और एक सेविका से कह दिया, ''महाराज को प्याला भर कर देती रहो ।''

अभी गीत की कड़ी समाप्त भी नहीं हुई थी कि नंद ने वीणा पर हाथ रखते हुए कहा, ''मैं इस स्वर्ग से कितनी दूर था सुवासिनी ! तुम्हारे नाम का ही अर्थ यदि मैं ग्रहण करता तो परम आनंद मिश्रित गंध का अनुभव कर लेता । तुम इतनी सुंदर क्यों हो सुवासिनी ।''

''महाराज ! मैं आपके राज्य में एक वेतन प्राप्त अभिनय करने

वाली अभिनेत्री हूँ ।''

''कौन कहता है तुम वेतन प्राप्त करने वाली अभिनेत्री हो ? तुम मेरी प्राणेश्वरी हो ।''

''मैं तो दासी हूँ महाराज !''

''इतनी मादक गंध की स्वामिनी, सुवासिनी ! तुम स्वयं को दासी कह रही हो । तुम मगध की साम्राज्ञी हो । तुमने मुझे रूप का यह जो छलकता हुआ प्रलोभन दिया है, नंद इसे नहीं भूल सकता ।'' और नंद उत्तेजना में उसका हाथ पकड़ लेता है ।

सुवासिनी नंद के इस रूप को देखकर घबरा जाती है । और भयभीत हो कर कहती है—''महाराज ! मैं तो आपके अमात्य राक्षस की धरोहर हूँ ।''

अपने मद में लड़खड़ाता हुआ विलासी नंद कामातुर होकर अबला सुवासिनी पर झपटता है तो उसका हाथ उसके वक्ष पर नहीं बीच में राक्षस की उंगलियों से अटक कर रह जाता है । अचानक राक्षस को सामने देख कर नंद चीख उठता है, ''तुम ! मेरे विद्राही ! मेरे प्रेमपुष्प को अपने गले में सजाने वाले दुष्ट, मैंने तुम्हें इसलिए अमात्य बनाया था कि तुम मेरे प्रतिद्वंद्वी बनोगे ।''

''हां सम्राट् ! एक अबला पर होने वाले अत्याचार से पहले मैं यहाँ पहुँच गया हूँ ।'' नंद ने वातावरण को पहचानते हुए अचानक अपने तेवर बदलते हुए कहा—''वास्तव में मुझे नहीं मालूम था राक्षस । सुवासिनी तुम्हें प्रेम करती है । मैं अपने इस कर्म से लज्जित हूँ ।''

''सम्राट् ! आपने मेरे प्यार की प्रतिष्ठा की, मुझे इसके लिए प्रसन्न्ता है ।''

राक्षस सुवासिनी को लेकर अपने कक्ष में चला गया और नंद अपना सा मुंह लेकर रंगमहल में चला गया ।

इधर चाणक्य ने पर्वतेश्वर आदि के साथ कुसुमपुर के एक भाग में आकर अपना डेरा डाल दिया । तभी जो सूचना मालविका को

मिलती है, उसे यह आचार्य चाणक्य के सामने रखते हुए कहती है–

''आचार्य ! सेनापति मौर्य कारागार में है, महात्मा शकटार का कुछ पता नहीं है, ब्राह्मण वररुचि को महाराज नंद ने आपका पक्ष लेने के दोष में अपदस्थ कर दिया है और तमाम नगर के नागरिक नंद की उच्छृंखल कामी प्रवृत्ति से त्रस्त हैं और यह तो अच्छा हुआ कि अमात्य राक्षस समय पर पहुँच गए अन्यथा दुष्ट नंद बेचारी सुवासिनी का शील भंग कर देता ।''

अपनी मुट्ठियां भींचते हुए चाणक्य ने दांत किटकिटाते हुए कहा–''सुवासिनी और राक्षस का समाचार दो मालविका ।''

''अभी तो वे दोनों स्वतंत्र है आचार्य ।''

''ठीक है, अब समय हो गया है मालविका ! तुम नर्तकी तो बन सकती हो ।''

''हाँ आचार्य ! मैं नृत्य तो जानती हूँ ।

''तब तो बहुत अच्छी बात है । यह लो मुद्रिका और पत्र और एक बात तुम्हें करनी है कि नंद की रंगशाला में जाकर यह पत्र और मुद्रिका राक्षस का विवाह होने से पूर्व नंद के हाथ में दे देना । और उनसे कहना कि अमात्य राक्षस ने यह मुद्रिका और पत्र सुवासिनी को देने के लिए कहा है क्योंकि मेरी भेंट अमात्य राक्षस से नहीं हो सकी, इसलिए उन्हें लौटाने आई हूँ ।''

''यह तो असत्य कथन है आचार्य !''

''तुम सत्यता और असत्यता का दोष मुझ पर छोड़ दो । मैंने सिंहरण को लिख दिया था कि मैं चंद्रगुप्त को शीघ्र यहाँ भेज दूंगा और यवनों के सिर उठाने पर तुम उन्हें शांत करना । अब मैं चाहता हूँ कि सब सैनिक वणिकों के रूप में धीरे-धीरे कुसुमपुर में एकत्र हो जाएं और राक्षस के विवाह के दिन विद्रोह का बिगुल बजा दिया जाए । उसी दिन चंद्रगुप्त सम्राट बनेगा ।''

''लेकिन आचार्य ! पहले फिलिप से युद्ध करने के बाद चंद्रगुप्त को लौट तो आने दीजिए ।''

''चंद्रगुप्त समय पर आ जाएगा मालविका ! तुम अपने कार्य पर तैयार रहो । वही होगा जिसे चाणक्य ने सोच-विचार कर निश्चित कर लिया है ।''

चाणक्य से यह आदेश पाकर मालविका अपने लक्ष्य की तैयारी में जुट गई । लेकिन तभी आचार्य के पास अलका आ गई और बोली–

''महाराज मेरे विचार में नंद की पराजय का एक उपाय आया है ।''

''देखो अलका ! मैं अपना कार्य अपनी बुद्धि से सोचकर करता हूँ । तुम केवल इस समय किसी और झंझट में बिना फंसे केवल मालविका की रक्षा करो और मुझे स्वयं निर्णय करने दो कि मुझे क्या करना है ।''

यह कहते हुए आचार्य चाणक्य रात के इस वातावरण में कुसुमपुर की छटा देखने निकल पड़े । वही वट वृक्ष, वही उजड़ी हुई झोंपड़ियां और इनके बीच जगमगाते प्रकाश में अपनी ऊँचाई का अभिमान दर्शाती हाल ही में विकसित बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएं । क्या रूप है प्रकृति का ? पल में कुछ, पल में कुछ । कौन कह सकता है, यह वही कुसुमपुर है जहाँ कभी एक ब्राह्मण अपनी जीविका के लिए महाराज नंद के समक्ष निवेदन करने गया था । इसी कुसुमपुर में पैदा हुए थे शकटार, जो महामात्य बने और यहीं जन्मे थे सेनापति मौर्य, जिन्हें अंधकूप का दंड भोगना पड़ा और ब्राह्मण चणी, मेरे अभागे पिता, आज तक उनका पता नहीं चल पाया, क्या गुजरी उनके साथ ? आज मैं कितना अकेला हो गया हूँ । क्योंकि एक ही उमंग थी कभी बालपन में –सुवासिनी । अंधकार में चलते-चलते चाणक्य दूर निकल आये थे तभी उन्हीं ने देखा, पृथ्वी का एक भूखंड से धूल-धूसरित दाढ़ी और बाल बढ़े हुए एक अशक्त पुरुष बाहर आता है । फिर लगभग

चीखते हुए वह कहने लगता है, ''अरे ओ अंधकार, अब तो मेरा पीछा छोड़ दे, अब तो मुझे देख लेने दे सूर्य को वरना मेरा दम घुट जाएगा।''

यह देख चाणक्य ने कहा–''तुम कोई दुःखी व्यक्ति हो। उठो, मैं तुम्हारी सहायता के लिए तैयार हूँ।''

''इस युग में कोई किसी की सहायता करेगा। जरूर तुम अंधेरे में झूठ बोल रहे हो, सूर्य की रोशनी में तुम्हारे भी इरादे बदल जाएंगे।''

''लगता है तुम जीवन से भी निराश हो गए हो?''

''नहीं, मैं अभी बचा हुआ हूँ। मुझे अभी प्रतिशोध लेना है उस नरपिशाच से। उसकी अंतड़ियों को खींचकर एक बार रक्त का फव्वारा छोड़ना चाहता हूँ।''

''तो तुम प्रतिशोध लेना चाहते हो? घबराओ नहीं, हम लोग एक ही राह के पथिक हैं।'' फिर कुछ रुककर चाणक्य ने कहा---क्या अब इस संसार में तुम्हारा कोई भी जीवित नहीं?''

''बची थी एक कन्या, अपनी मां की इकलौती यादगार। पता नहीं अब कहाँ होगी, मेरी सुवासिनी!''

''क्या कहा? सुवासिनी!''

''हाँ, सुवासिनी!''

''तो तुम शकटार हो?''

वह व्यक्ति झुंझलाकर अपने नाखूनों को चाणक्य की गर्दन पर बढ़ाते हुए आक्रमण की मुद्रा में आ गया। ''जान से मार दूंगा तुमको अगर यह नाम फिर तुम्हारी जीभ पर आया तो। पहले मुझे नंद से अपना प्रतिशोध ले लेने दो फिर चाहे सारे मगध में ढिंढोरा पीट देना।''

किसी तरह चाणक्य ने अपने आपको शकटार की जकड़ से

छुड़ाते हुए कहा, ''वह अब नंद की रंगशाला में है। और मुझे पहचानते हो?''

अंधेरे में शकटार आँखें गड़ाकर देखने का प्रयास करता है लेकिन आँखों में पड़े जाले के कारण पहचान नहीं पाता।

''तुम्हारा पड़ोसी ब्राह्मण चणी का पुत्र विष्णुगुप्त! जिसकी पुरोहिती तुम्हारा साथी होने के कारण छीन ली गई और उसने तुम्हारा पक्ष लेकर नंद को नगर भर में विरोध के रूप में चुनौती दी तो उसे भी राज्य से निकाला दे दिया गया। मैं उसी चणी का पुत्र चाणक्य हूँ—राज्यसभा में जिसकी शिखा पकड़ कर खींची गई। जिसे बंदी बनाने के लिए नंद ने पूरा प्रयास किया लेकिन मैं भाग्य से बच गया। मेरा विश्वास करोगे?''

शकटार तो पहले ही हार चुका था, लेकिन चाणक्य को सम्मुख पाकर उसे लगा मानो एक बार फिर कोई उसका आत्मीय उसे मिल गया। वह कहने लगा, ''करूँगा, करूँगा, जैसा तुम कहोगे, मुझे केवल प्रतिशोध लेना है।''

''तो सुनो, मेरी बात ध्यान से सुनो। मेरे साथ मेरी झोंपड़ी में चलो और इस सुरंग को घास-फूस से ढक दो।''

शकटार सुरंग को ढककर चाणक्य के पीछे-पीछे चल पड़ता है। वह अंधेरे में रहने का अभ्यासी हो गया था। इसीलिए उसे कोई परेशानी नहीं हुई। चाणक्य के साथ चलते हुए शकटार को एक बार फिर अपने पुराने दिनों की याद आ गई। पहले कई बार चाणक्य, बालक विष्णुगुप्त के रूप में शकटार के साथ राजभवन में गया है। आज शकटार स्वयं चाणक्य के पीछे-पीछे चल रहा था। उसे लग रहा था शायद यह अंधकार, जो मगध के भाग्याकाश पर छा रहा है, छंटेगा। शकटार को नई सुबह की संभावनाएं खुलती दिखाई पड़ रही थीं। नंद अपने सैन्यबल के होते हुए भी, राजभवन में सुरक्षा के कड़े पहरे के बावजूद अपने चारों ओर भय का शिकंजा कसता हुआ

अनुभव कर रहा था। मगध के लिए यह सुबह शंकाओं की सुबह के रूप में उदित हुई। नंद इस समय चिंता में राक्षस की प्रतीक्षा कर रहे थे।

दूसरी ओर कुसुमपुर में वणिकों, व्यापारियों के वेश में एक बड़ी सेना जमा हो गई थी। चंद्रगुप्त भी आ गया था, द्वंद्व युद्ध में फिलिप्स के मारे जाने का पंचनद में सभी ने प्रशंसा के रूप में लिया और चंद्रगुप्त के जयकारों से सारा आकाश गूंज उठा था। सिंहरण को वहाँ की व्यवस्था के लिए छोड़ कर चंद्रगुप्त इधर आ गया था। उसे चाणक्य का यही आदेश था। धीरे-धीरे नागरिकों में विद्रोह जागने लगा। स्वयं महामात्य शकटार और सेनापति मौर्य को अपने सम्मुख जीवित पाकर नगरवासियों के मन में नंद के प्रति घृणा पैदा होने लगी। सभी एक स्वर से न्याय मांगने के लिए नंद की राजसभा में दो टूक फैसला करने के उद्देश्य से जमा होने लगा। कितना हृदयविदारक दृश्य था, जब चुने हुए अश्वरोहियों को लेकर नंद के अंधकूप कारागृह से जाकर चाणक्य के गुप्तदूतों ने गुफा का द्वार खोला। मालविका, वररुचि, सेनापति मौर्य और पीछे-पीछे चंद्रगुप्त की मां, सभी लोगों ने, विशेषकर सेनापति मौर्य ने लंबे अंधकार के बाद प्रकाश के दर्शन किये और खुली हवा में सांस ली।

चंद्रगुप्त को संबोधित करते हुए चाणक्य ने कहा–''अपने पिता के चरण छुओ वत्स!''

पिता के आंसू पोंछते हुए चंद्रगुप्त ने कहा–''एक-एक पीड़ा और निष्ठुरता का प्रतिकार होगा। आप निश्चिंत रहें।''

''आवेश और कर्तव्य में अंतर है वत्स! सफलता का एक क्षण होता है। देखो, इधर नागरिक लोग राजभवन में जमा हो रहे हैं। यही अवसर है, तुम लोगों के भीतर जाने का और नागरिकों के साथ मगध का उद्धार करने का।''

नागरिकों में आज चर्चा का यही विषय था, अपने निष्ठावान

मंत्रियों और सेनापति को अकारण बंदी बनाकर जो अहंकारी राजा राज्य करता है, उसे सिंहासन पर बैठने का कोई अधिकार नहीं । सभी नागरिक एक स्वर में कहने लगते हैं—''अब न्याय का ढोंग नहीं, न्याय होगा ।''

ये सभी लोग भवन की ओर बढ़ रहे थे और राजसभा में नंद, राक्षस और सुवासिनी को बंदी बनाए उनसे उलझा हुआ था ।

''देखा राक्षस ! यह पत्र सुवासिनी के लिए उसे कारागार से भागने का परामर्श देते हुए तुम्हीं ने तो लिखा था और मुद्रिका तुम्हारी ही तो है । अब बोलो कृतघ्न ! तुम अपनी सफाई में क्या कहना चाहते हो ?''

''मैं अगर कुछ कहूँ भी तो आप स्वीकार नहीं कर पाएंगे ?''

''तुम्हारे उत्तर से मैं संतुष्ट नहीं हूँ राक्षस ! इसलिए तुम्हें भी उसी अंधकूप में जाना होगा ।'' प्रतिहारी उसे और सुवासिनी को ज्यों ही अंधकूप में ले जाने के लिए मुड़े तभी नागरिकों का एक रेला राजभवन में प्रविष्ट हो गया ।

नंद ने उन्हें आता देख बौखलाते हुए कहा—''यह सब क्या है, कैसा शोर है, क्या चाहते हो तुम लोग ?'' कहा किसने, कुछ पता नहीं चला लेकिन जब नंद ने अपने सम्मुख शकटार, वररुचि और सेनापति मौर्य को मालविका और चंद्रगुप्त की मां के साथ अनेक नागरिकों के बीच देखा तो उसे यह विश्वास करने में कुछ देर नहीं हुई कि षडयंत्र कितना गहरा उसके विरुद्ध बढ़ चुका है । फिर भी उसने बंदियों का उपहास करते हुए प्रतिहारी से कहा, ''बंदी बना लो इन सबको ।''

नागरिकों ने इसका प्रतिरोध करते हुए प्रश्न किया—''हम सब बंदी बनने के लिए तैयार हैं किन्तु न्याय हम लोगों के सामने किया जाए । हम अपराध सुनने आए हैं ।''

''तो क्या अब राजा को प्रजा के दबाब में चलना होगा ?''

''हाँ महाराज !''

''तो तुम सब विद्रोही हो ?''

''यह आप अपने हृदय से पूछें । न्याय की आड़ में महामंत्री शकटार के सात पुत्रों का वध, निरपराध सेनापति मौर्य को अंधकूप का दंड ।''

''मैं कुछ सुनना नहीं चाहता । सैनिकों इन सबको बंदी बना लो ।''

''ठहरो, बंदी बनाने के लिए तलवार की शक्ति का प्रदर्शन आवश्यक है । तुम्हारे पास जो सैन्य बल है और जिस पर तुम भरोसा करते हो, वह गिना-चुना महल में शेष है नंद । मगध के लिए शेष सारी सेना समर्पण कर चुकी है । हम तुम्हारी प्रजा हैं नंद ! हमें पशु बनने का अवसर मत दो ।''

''ठीक है ।'' कुछ सोचकर नंद ने अपने सम्मुख विपत्ति को आया जानकर यह घोषणा की—''अच्छा मौर्य ! हमने तुम सब लोगों को क्षमा किया और मौर्य, तुम फिर से हमारे सेनापति नियुक्त किए जाते हो ।''

''इससे कोई निराकरण नहीं होगा नंद ! हमसे पूछो, जो अपराध तुमने किए हैं, उनका न्याय कौन करेगा ? कौन देगा मुझे वापिस मेरे सात पुत्रों को, तुम केवल घृणा के पात्र हो, अब तुम्हें स्वयं न्यायाधिकरण के सम्मुख प्रस्तुत होना होगा । तुम्हारा सिंहासन अब डोल गया है नंद ।''

शकटार के इस चुनौती भरे कथन के साथ नंद का इशारा पाकर उसके सैनिक इन सबको बंदी बनाने के लिए आगे बढ़ते हैं लेकिन चंद्रगुप्त की सेना के सम्मुख नंद पराजित हो जाता है । वह असहाय-सा गिर पड़ता है । उसके माथे का मुकुट लुढ़क जाता है ।

चाणक्य गिरते हुए नंद के मुकुट को उठाते हुए विजेता की मुद्रा

में आगे बढ़कर नंद को उसके बाल पकड़कर सिर के बल उठाते हुए खड़ा करके भारी नागरिकों की भीड़ में कहते हैं– मेरे हाथ में यह जो मगध का मुकुट है, इसका उत्तराधिकारी तो मैं नियुक्त करूँगा ही लेकिन तुम्हारे ऊपर जो अभियोग हैं –तुमने महापद्म की हत्या की, शकटार को बंदी बनाया और उसके सात पुत्रों को भूख से तड़पाकर मार डाला, उसकी पुत्री को अपनी वासना का शिकार बनाने के लिए प्रयत्नशील रहे, सेनापति मौर्य की हत्या करने का प्रयास करते हुए उसकी स्त्री और वररुचि को तुमने अकारण अपने अहम् में कारागार में दंड भोगने को बाध्य किया। कितनी ही कुलीन स्त्रियों का शील भंग किया। दुष्ट, पापी! तुमने नगर भर में व्यभिचार का खुला तांडव किया है। यहाँ तक कि ब्राह्मणों और अनाथों के लिए राज्य की जिस वृत्ति का प्रावधान होता है, उसको भी बंद कर दिया।''

चाणक्य नंद के अवगुणों का चिट्ठा प्रस्तुत कर रहे थे तभी नागरिकों ने बीच में रोककर कहा–''बस, बस आचार्य! इस दुष्ट की पिशाच लीला सुनाने की अब कोई आवश्यकता नहीं। अब तो इसका दंड निर्धारित कीजिए।''

अभी निश्चय के स्तर पर कुछ भी नहीं किया गया था, केवल परामर्श चल रहा था कि तभी भीड़ में से शकटार ने नंद की छाती में तेजी से एक पैनी धार वाला छुरा भौंक दिया। वह कह रहा था–

''मेरे सात-सात पुत्रों की हत्या करने वाले दुष्ट! यदि मुझे सात जन्म तुझेही मारने के लिए प्राप्त हों तो भी मैं तुझे क्षमा नहीं कर सकता।''

नंद की आखिरी सांस के साथ मगध के इस अत्याचारी शासक का युग समाप्त हो गया। चाणक्य के आदेश पर महामात्य राक्षस के बंधन खोल दिए गए। नंद पुत्री कल्याणी और शकार पुत्री सुवासिनी को भी मुक्त कर दिया गया। अब मगध का सिंहासन खाली था और इसका निर्णय राष्ट्रीय परिषद् कर सकती थी, इसलिए नागरिकों ने

चाणक्य, चंद्रगुप्त, शकटार, राक्षस, सेनापति मौर्य और वररुचि की सम्मिलित घोषणा करते हुए कहा–''यह परिषद् राज्य-सिंहासन के लिए योग्य उत्तराधिकारी का चयन करेगी ।''

अब चाणक्य ने कहा–''उत्तरापथ के समान मगध में गणतंत्र स्थापित हो पाने की संभावना नहीं और मगध पर कभी भी कोई विपत्ति आ सकती है, इसलिए यहाँ पर हर दृष्टि से एक सबल और सक्षम शासक की आवश्यकता है । इसके लिए आप उपयुक्त व्यक्ति का नाम सुझाएं ।''

सबने एकमत से चंद्रगुप्त का नाम ही लिया ।

चाणक्य का लक्ष्य अब उनके सामने था, इसलिए उन्होंने बड़े स्नेह भाव से कहा–''ओ चन्द्रगुप्त ! आगे बढ़ो और अमात्य राक्षस, तुम सम्राट् का अभिषेक करो ।''

नंद की सेना का विद्रोह को कुचलने के लिए कुछ देर पहले नंद सहित जो लोग मारे गये उन्हें एक ओर कर दिया गया । राक्षस धीरे-धीरे चंद्रगुप्त का हाथ अपने हाथ में लेकर सिंहासन की ओर बढ़ने लगा । चंद्रगुप्त के सिंहासन पर बैठते ही चारों ओर से सम्राट की जय-जयकार होने लगी । इस पर चाणक्य ने कहा–''आज जो यह राष्ट्र का नवीन जन्मदिवस है, इसमें तुमने स्वेच्छाचारी शासन का अंत किया है इसलिए अब मंत्रिपरिषद् की सम्मति से मगध और आर्यावर्त के कल्याण में लगना ही तुम्हारा नैतिक उत्तरदायित्व है । मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है ।

10. यवनों का पुनः आक्रमण

मगध पर चंद्रगुप्त की विजय का उत्सव मनाया जाए, मंत्रिपरिषद् के सामने यह विचार चल रहा था। अमात्य राक्षस ने अपनी सम्मति प्रकट करते हुए कहा कि यह दिन मगध के उज्ज्वल भविष्य का पहला दिन है और जो विजय हम सबने सम्मिलित पाई है, इसको हम सबको ही उत्सव के रूप में मनाना चाहिए। इसे ऐसे ही यूं फीका क्यों जाने दिया जाए? राक्षस की बात सुनकर शकटार ने कहा–''विजय उत्सव मनाने का मन तो मेरा भी कर रहा है किन्तु आचार्य चाणक्य की राय इसके विपरीत है। वे चाहते हैं कि यह अनावश्यक पाखंड है। जिसमें प्रजा के धन का दुरुपयोग होगा।''

यह भी स्पष्ट होना चाहिए, चंद्रगुप्त की मां ने कहा कि ''इस साम्राज्य का अधिपति कौन है? चंद्रगुप्त या आचार्य चाणक्य?''

चाणक्य मौन थे, जो वह सोच रहे थे, वह यहाँ परिषद् में कह नहीं सकते थे और जो कह सकते थे, वह उनके भाव से स्पष्ट नहीं हो पा रहा था। फिर भी उन्होंने राक्षस से कहा–''राक्षस! तुम इस विषय में क्या कहते हो?''

''मैं इस बारे में क्या कह सकता हूँ आचार्य! मैं तो सबकी इच्छा के साथ हूँ।''

''मैं, अपने अधिकार और उत्तरदायित्व को समझकर ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उत्सव एक आडंबर है और इस समय की स्थितियां किसी भी उत्सव की स्वीकृति नहीं देतीं।'' चाणक्य ने कहा।

''यह अजीब बात है।'' चंद्रगुप्त की मां ने आवेश में आकर कहा, जब नंद राजा था तब हम उसके अनुकूल कार्य करने के लिए बाध्य थे, अब हमारा पुत्र राजा है तो हम आचार्य चाणक्य के निर्देशों

पर चलने के लिए बाध्य हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मगध की स्वतंत्रता के बाद भी इच्छानुकूल आचरण करने के लिए हम स्तवंत्र नहीं हैं।''

''गणराज्य वही होता है जिसमें राजा या उसके परिवार की व्यक्तिगत इच्छा का कोई महत्व नहीं होता, उसका केवल उत्तरदायित्व होता है। और आप तो अच्छी प्रकार जानते हैं सेनापति मौर्य कि कोई भी राज्य इच्छाओं से नहीं, उत्तरदायित्व के निर्वहण से चलता है।''

वह सोच रहे थे, तर्क से और मंत्री परिषद से सेनापति मौर्य और उसकी पत्नी, चंद्रगुप्त की माता, आर्य राक्षस, सभी उत्सव न होने के कारण हतोत्साहित हुए। मौन विरोध करते हुए मंत्री परिषद् से बाहर चले गये। चाणक्य सोचने लगे—यह उलटी हवा कैसे चलने लगी? वे बैठे थे विचारमुद्रा में तभी उन्हें एक बहुत पुरानी चिरपरिचित पदचाप सुनाई दी और आचार्य पहचान गए, उन्होंने कहा, ''सुवासिनी!''

''विष्णुगुप्त।''

इतने लम्बे समय का अंतराल विष्णु को विष्णुगुप्त बना गया।

''आप आचार्य हैं, राष्ट्र राज्य निर्माता। मैंने परिषद् कक्ष से अपने पिता को उदास निकलते हुए देखा। क्या आपने उनसे कोई अनुचित बात की है?''

''विष्णुगुप्त!'' और इससे आगे बिना कुछ कहे सुवासिनी अपनी सूनी-सूनी आँखें लिए हुए चली गई। वह सोच नहीं पा रही थी कि यह कौन सा रूप था विष्णु का। तभी उन्हें यह समाचार मिलता है कि सेनापति मौर्य और उनकी पत्नी मगध छोड़कर चले गए।

अपने हाथ की उंगलियों को फैलाए कुछ सोचते हुए फिर उंगलियों को कसकर मुट्ठी बनाए दृढ़ संकल्प करते हुए चाणक्य ने

मन ही मन कहा, चलो अच्छा हुआ अब चंद्रगुप्त भावुकता से मुक्त होकर राज्य करेगा। तभी मालविका ने आचार्य के कक्ष में प्रवेश करते हुए उनके मौन को तोड़कर पहले तो प्रणाम किया और फिर कहा कि चंद्रगुप्त अपनी विजय यात्रा को आपके आदेश पर अधूरा छोड़कर लौट रहा है। लेकिन आचार्य, मैं देख रही हूँ कि मगध से विजय का कोई उल्लास नहीं।

''मालविका! पाटलिपुत्र के चारों तरफ इस समय षडयंत्र पल रहे हैं, इसमें थोड़ा भी प्रमाद बड़ा घातक हो सकता है, इसलिए सावधानी आवश्यक है और मैं तुम पर यह उत्तरदायित्व छोड़ रहा हूँ कि चंद्रगुप्त के प्राणों की रक्षा तुम्हें करनी होगी।''

यह कह कर आचार्य अपने विश्राम कक्ष में चले गए और मालविका अपने कक्ष में। अपनी विजय यात्रा से लौट कर चंद्रगुप्त को पहला समाचार यही मिला कि उसके माता-पिता अब मगध छोड़ कर चले गए हैं और कारण में सबका मौन इस बात का द्योतक था, शायद आचार्य चाणक्य की इच्छा इसमें प्रमुख थी। उद्विग्न चंद्रगुप्त अपने कक्ष में टहल रहा था तभी उसे चाणक्य की खड़ाऊं की चट-चट आवाज आती है और वह सतर्क हो जाता है।

खड़ाऊं की आवाज रुकते ही.....

''आचार्य प्रणाम!''

''तुम्हारा कल्याण हो वत्स! यश और कीर्ति बढ़े किन्तु तुम्हारा प्रणाम आज कुछ बोझिल-सा लगता है, क्या बात है? कुशल तो है?''

''मैं कुशल हूं आचार्य पर ....''

''मैं समझ गया, तुम भी उत्सव न होने के कारण खिन्न हो रहे हो। परन्तु तुम सम्राट् हो चंद्रगुप्त, भावुकता और उत्तरदायित्व में अन्तर करना तुम जानते हो।''

''लेकिन मेरे माता-पिता...''

''क्यों गए, यही न, अगर मैं कहूँ वे स्वयं गए रुष्ट होकर। किसी की मंशा उन्हें भेजने की नहीं थी। मेरा मन बिल्कुल नहीं था।''

''यदि वे लोग चाहते थे कि मेरी विजय को पर्व के रूप में उल्लास के साथ मनाया जाता तो.....''

''तुम पूछते हो तो इतना ही कहूंगा, मर्यादा आड़े आ रही थी और इस समय कोई भी उत्सव प्रमाद का विस्तार ही करता।''

''किन्तु वे तो मेरे माता-पिता थे, कितने वर्षों बाद उन्हें यह सुख मिला था कि उनका पुत्र विजय पाकर लौटा है।''

''जिनके पुत्र इस अग्नि में समाधि ले चुके हैं, जिनके पिता, परिजन, परिवारजन यातना की लंबी यात्रा के बीच में ही साथ छोड़ गए, क्या यह विजय उनके लिए सुखकारी होती?''

''फिर चंद्रगुप्त, उन्हें आवश्यकता थी शांति की, इसीलिए वे यहां से चले गए। इसमें इतना खिन्न होने का क्या प्रश्न है?''

''आचार्य! आप साम्राज्य से भी आगे मेरे परिवार का नियंत्रण भी अपने हाथ में लेकर उसे संचालित करना चाहते हैं। यह अधिकार...''

''तुम राजा की भाषा इतनी जल्दी सीख जाओगे वत्स! मैंने सोचा भी न था। चंद्रगुप्त! मैं ब्राह्मण हूँ, खुले आकाश में रमण करने वाला, बुद्धि-विलास में मन रमाने वाला, धर्म का अनुसारणकर्ता, प्रकृति में रमण करने वाला, सन्तोष को धारण करने वाला। सोचता हूँ मैं अपने कर्म को छोड़कर कहाँ आ गया? जहाँ प्रेम की जगह घृणा, सादगी के स्थान पर कुचक्र, कुमंत्रणा, संघर्ष है और इनके संचालन की अधिष्ठात्री कूटनीति है वहाँ, नहीं चाहिए मुझे यह अधिकार, ले लो चंद्रगुप्त लौटा लो इसे।

वह अब मेरा पुनर्जन्म होगा, मैं अपनी जगह वापिस लौटना चाहता हूँ, जो मेरी वास्तविक जगह है । मैं जिस कल्पना की मरीचिका के पीछे दौड़ रहा था, तुमने अच्छा किया चंद्रगुप्त, मुझे शीघ्र ही यह अनुभव करा दिया कि मेरा स्थान कहाँ है । मैं शांति जहाँ खोज रहा था वास्तव में वहाँ तो अशांति का साम्राज्य है । मैं जान गया हूँ । तुम मुक्त हो चंद्रगुप्त । मेरे हर बंधन से मुक्त, स्वतंत्र, स्वतंत्र, स्वतंत्र ।'' यह कहते हुए, इससे पहले कि चंद्रगुप्त कुछ और कहें, आचार्य चाणक्य उसी प्रकार अपनी खड़ाऊं की आवाज़ करते हुए लौट गए ।

चंद्रगुप्त सुन रहा था, पगचाप धीरे-धीरे मद्धिम होती रही, फिर लुप्त हो गई । चंद्रगुप्त इतने बड़े महल में अकेला खड़ा था, अवाक् । चंद्रगुप्त के कहने पर चले गये आचार्य चाणक्य । चलते-चलते सिंधु नदी के तट पर एक कुटी बना ली ब्राह्मण ने । यही उसकी वास्तविक जगह थी । यहाँ मुक्त था वह हर छलना से । न कोई प्रपंच, न आडम्बर । अपनी कुटिया में शीतल पाटी पर अधलेटे आचार्य चाणक्य सोच रहे थे । और कात्यायन उनके पास ही बैठा था । उसका प्रश्न था, वह क्या करे । वह तो ब्राह्मण वृत्ति का साधु व्यक्ति, अपने वार्तिक को पूरा करने में लगा था । राजकाज से उसका क्या काम । किन्तु यहाँ तो आचार्य चाणक्य के आदेश का पालन करना ही होगा, प्रश्न मगध का जो है ।

''तुम जितना शीघ्र हो सके मगध पहुँचो, कात्यायन ! और चंद्रगुप्त को यवनों के आक्रमण का प्रतिकार करने के लिए शीघ्र वहाँ भेजो । लेकिन ध्यान रहे, उसे यह ज्ञात न हो कि मैं यहा हूँ । समय आने पर मैं स्वयं वहाँ उपस्थित हो जाऊँगा । हां, एक बात और, यदि सुवासिनी को भेज दोगे तो काम संभवतया कुछ सरल हो जाएगा ।''

कात्यायन को कुछ शरारत सूझ गई ।''अच्छा तो आचार्य ! यहां आपका समय सही कट जाएगा । हां विष्णुगुप्त, वह तो तुम्हारी बालपन की सखी है । आखिर गार्हस्थ्य जीवन का भी सुख होता है ।''

''तुम मूर्ख हो कात्यायन! अच्छा यह बताओ, क्या समाचार है?''

कात्यायन ने यवन शिविर का समाचार देते हुए कहा, ''विष्णुगुप्त! तुम्हें इसी नाम से पुकारता हूँ तो लगता है कि अपने मित्र से बात कर रहा हूँ और चाणक्य कहता हूँ तो एक गहरे कूटनीतिज्ञ के फंदे से फंस कर रह गया हूँ। हां, तो मैं कह रहा था, सैल्यूकस की पुत्री, वह यवन बालिका, जाति से यवन अवश्य है, किन्तु विशुद्ध भारतीय संस्कारों से युक्त एक सुसंस्कृत युवति है। तुम एक प्रतिज्ञा करो, उसका अनिष्ठ नहीं करोगे।''

इतना कहते हुए कात्यायन मगध के लिए प्रस्थान कर गया। आचार्य के मस्तिष्क में एक और सूत्र ने करवट बदली। आचार्य ने एक सेवक को तुरंत भेजकर आम्भीक को बुलवा लिया। इस समय आम्भीक से मिलना बहुत आवश्यक था। कात्यायन के जाने के बाद आचार्य आम्भीक की बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे। तभी सेवक ने सूचना दी कि आम्भीक शीघ्र ही स्वयं आचार्य से मिलने आ रहे हैं।

यवनों के इस आक्रमण को असफल करने के लिए चाणक्य कोई भी गोट खाली नहीं गंवाना चाहते थे। इसीलिए आम्भीक की भीतरी शक्ति और पुरानी भूल के पश्चातापी भाव को समझते हुए उन्होंने आवश्यक समझा कि आम्भीक को योजना में सम्मिलित किया जाए। अभी आचार्य सोच ही रहे थे कि उन्हें अपने सेवक के साथ आम्भीक के आने का आभास हुआ।

''प्रणाम, आचार्य चाणक्य!''

''राजन, प्रणाम स्वीकार करता हूँ। तुम्हें मेरे जैसे व्यक्ति से मिलने में कोई संकोच तो नहीं हुआ?''

''पुरानी भूल का स्मरण अब और मत कराइए आचार्य! वह आम्भीक तो सिंधु में स्नान करके क्षत्रिय हो गया है।''

''तो सुनो, आम्भीक ! चंद्रगुप्त दक्षिण स्वर्ग गिरि से पंचनद तक, सौराष्ट्र से बंग तक एक महान साम्राज्य का अधिपति हो गया है, केवल तुम्हीं इस आर्यावर्त के पूर्ण भाग से अलग हो । यवनों के इस द्वितीय आक्रमण में क्या तुम भारत के द्वार पर यवनों को चुनौती दे सकते हो, या पहले की तरह...''

आचार्य के वाक्य को बीच में ही रोककर भावुक हुए आम्भीक ने कहा, ''बस कीजिए आचार्य ! गलती दोहराई नहीं जाती है ।''

''तो तुम सिंधु तट पर यवनों को रोकोगे, झेलम पर चंद्रगुप्त तैयार रहेगा ।''

''लेकिन अकेला में यवनों को कैसे सिंधु तट पर रोक पाऊंगा ।''

''तो फिर मगध सेना तक्षशिला दुर्ग पर पहले अधिकार करेगी ।''

''तो इसका सूत्र अलका के हाथ में होगा । और सिंहरण यहाँ के शासक होंगे ।''

''मुझे सभी कुछ स्वीकार है, आचार्य ! इससे कम से कम मेरा पुराना कलंक तो धुल जाएगा ।'' यही तो चाहते थे, आचार्य ! अब निष्कंटक रूप से यवनों को भारत की धरती पर पांव धरने से रोका ही नहीं जाएगा बल्कि छठी का दूध याद करा दिया जाएगा । अभी चाणक्य और आम्भीक यह विचार-विमर्श कर ही रहे थे कि अपने उद्देश्य में सफल होकर अलका, तक्षशिला में जनचेतना का संचार करके सिंहरण के साथ आचार्य को अपनी प्रगति का समाचार देने आती है । किन्तु कुटिया में आम्भीक को देखकर ठिठक जाती है ।

''अरे भाई तुम !''

''हां अलका, मैं! तू मुझसे छोटी होकर भी बड़ी हो गई है। तक्षशिला में अब आम्भीक की नहीं अलका और सिंहरण की आवश्यकता है।''

''तुम क्या कह रहे हो?'' आम्भीक से यह सुनकर अलका को आश्चर्य होता है।

''अलका, मेरी बहन, मुझे क्षमा कर दें, मैं देशद्रोही राज्य के योग्य नहीं रहा।''

''तुम अब भी गलत सोच रहे हो भाई। राज्य किसी की व्यक्तिगत धरोहर नहीं, सुशासन का होता है राज्य! चंद्रगुप्त स्वयं सेवक है। इसलिए तक्षशिला किसी एक की नहीं, आर्यावर्त का एक हिस्सा है। यह आर्यावर्त एक हो जाए, यही हमारा संकल्प है।''

''मैं तुम्हारे संकल्प को पूरा करने के लिए अपना रक्त बहा दूंगा अलका, पर संकल्प पर आंच नहीं आने दूंगा।''

चाणक्य आक्रमण की सफलता की व्यवस्था के लिए जुट जाते हैं। सुवासिनी आक्रमण के परिणाम को सम्मानजनक मोड़ देने की जुगत भिड़ाने में जुट जाती है। अब चाणक्य सिंधु की लहरों को गिनते हुए एकांत तट पर बैठे युद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा में हैं, जबकि दूसरी ओर यवनों और चंद्रगुप्त की सेना में घमासान युद्ध प्रारम्भ हो चुका हैं और एक ओर से आम्भीक का आक्रमण, दूसरी ओर से चंद्रगुप्त का और यह देखकर सैल्यूक्स स्वयं को बीच में फंसा हुआ अनुभव करता है—वह घायल होकर गिर पड़ता है।

उसके मुंह से यही निकलता है—''आम्भीक! तुमने मुझे धोखा दिया।''

''नहीं सैल्यूकस! पुराने कलंक को धोने का प्रयास किया है लेकिन.....'' तभी एक भाले से आम्भीक बुरी तरह घायल होकर

मूर्च्छित हो जाता है । धरती पर उसका अचेत शरीर गिरता है । नहीं रहा आम्भीक लेकिन मरते हुए वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर गया । चाणक्य को जब यह समाचार मिलता है, तो उसे संतोष होता है ।'' चलो, आम्भीक ने जो कहा कर दिखाया ।''

अब तो यवन सेना में भगदड़ मच जाती है । उसी समय मौके पर सिंहरण ने आकर सेना की कमान सम्भाल ली ।

''तुमने अच्छे समय पर आकर मुझे बल दिया सिंहरण ।'' चंद्रगुप्त ने उसके आने से राहत अनुभव की ।

''प्राण देने का कोई भी अवसर मालव नहीं गंवाते सम्राट! आचार्य का आदेश है कि आप सिंधु पर, स्कंधावार पर आक्रमण करें, यहाँ मालव और तक्षशिला की सेना आपका स्वागत करेगी ।''

''तो यहाँ भी आचार्य ने मेरा ध्यान रखा । मैं उनका आभारी हूँ सिंहरण ।''

चंद्रगुप्त आचार्य के आदेशानुसार आक्रमण के लिए चल दिया ।

11. शिखा-बंधन

कितना कुशल नीतिनिपुण है ब्राह्मण! आचार्य चाणक्य के कौशल को देखकर न केवल भारतीय अपितु यवन वीर भी उसके बुद्धि-विकास का लोहा मान रहे थे। यूं कहने को आचार्य चाणक्य सम्राट् चंद्रगुप्त को मुक्त करके चले आए थे, सब कुछ छोड़कर सिंधु के तट पर किंतु वास्तव में यही वह स्थान था, जहाँ से वे मगध, गांधार, मालव और पंचनद की गतिविधियों पर दृष्टि जमाए थे। यहीं से वे सीमा पार यवनों की हलचल का जायजा भी लेते रहे।

इस सब कार्य में उनके विशेष दूत तो सहयोगी रहे ही, अलका और सिंहरण दोनों ने अभूतपूर्व सहयोग किया। यहीं पर आचार्य ने आम्भीक से मिलकर उसका हृदय परिवर्तन करके उसमें राष्ट्रभक्ति की चेतना का संचार किया। सुवासिनी के माध्यम से कार्नेलिया का भावात्मक संस्कार और राक्षस को बिखरने से रोका। पूरा दृश्य जगत् आचार्य के सम्मुख था। आज उनका लक्ष्य सही मायने में पूरा हो चुका था। केवल चीजों को एक स्थिति देना भर बाकी था।

''यह सूर्योदय कितना मनोहारी था, कितना धवल और अभीसिप्त। आज की पहली किरण में मैंने जाना– मेरे कंधे कितना हलकापन अनुभव कर रहे हैं। आज मैं धन्य हो गया हूँ। मेरा लगाया पौधा फूलों से सज्जित अपनी गंध फैला रहा है।''

पता नहीं कैसे सुरसुराहट हुई। झाड़ियों में शायद कोई है। और आचार्य अपने ही ध्यान में आगे बढ़ गए। सेनापति मौर्य कब से इस झाड़ी में छिपे इस अवसर की तलाश में थे। उन्हें यह ब्राह्मण पिता और पुत्र के बीच एक दीवार लगा, इसीलिए तेज धार की छुरी से मौर्य ने इस दीवार को सदा के लिए गिराने में ही अपना भला समझा। इस बुद्धिमानी प्राणी ने ही मेरे पुत्र के सम्राट् होने के बावजूद सारी सत्ता

अपने हाथ में संभाले रखी है। यह सम्राट् के पिता की अवज्ञा करे? भला यह कैसे हो सकता है?

अचानक सेनापति मौर्य झाड़ी से निकल कर आचार्य के पीछे दौड़ कर उन पर छुरी से वार करता है। तभी सुवासिनी, जो पहले से ही मौर्य के इरादे पहचान चुकी थी, दौड़ कर मौर्य का वार रोकने में सफल हो जाती है। थोड़ा-सा शोर होता है और इतनी ही देर में वहाँ सिंहरण, चंद्रगुप्त और उसकी माता भी आ जाती है। कोई समझ नहीं पाता, क्या हुआ? हां, सेनापति मौर्य के हाथ में छुरी अब भी उसी प्रकार तनी हुई थी और मुखमुद्रा बिगड़ी हुई थी।

''यह क्या पिताजी! आप जानते हैं आप क्या करने जा रहे थे।''

और फिर चाणक्य के चरणें में गिरकर, ''क्षमा करें आचार्य, मैं आपका अपराधी हूँ।'' सिंहरण सेनापति के हाथ से छुरा लेकर एक तरफ फेंक देता है।

''कैसी विकट स्थिति है नियति फिर मेरी परीक्षा लेना चाह रही है, किन्तु अबकी बार मैं भ्रम में नहीं हूँ।''

निश्चिंत होकर कहता हूँ—''आचार्य! प्रभु की असीम कृपा है, आपका यह शिष्य कलंकित होने से बच गया।''

''आज केवल मैं अधिकार चाहता हूँ सम्राट् चंद्रगुप्त।''

''आपकी आज्ञा ही सर्वोपरि होगी, आचार्य!''

''तो सुनो, मैं शकटार के जमाता राक्षस को आर्यावर्त का मंत्रीपद प्रदान करता हूँ। और तुम सेनापति। शस्त्र त्याग कर वानप्रस्थ ग्रहण करो। यही तुम्हारा प्रायश्चित है।''

राक्षस, जो अभी तक एक कोने में उपेक्षित और भयभीत खड़ा था, आगे आकर आचार्य के चरणों में गिर पड़ा।

''उठो मगध के महामात्य! अपना कर्तव्य पूरा करो, आर्यावर्त की रक्षा में जुट जाओ।'' और फिर धीरे से, ''सुवासिनी की गंध कभी मध्यम ने पड़नपे देना। वह तुम्हारे जीवन को अपनी सुवास से महका देगी।''

तभी सूचना मिलती है– सैल्यूकस आचार्य चाणक्य के दर्शन के लिये पधार रहे हैं ।

''ठीक है, सैल्यूकस का स्वागत है किन्तु यहाँ नहीं, राजमंदिर में उनका स्वागत किया जाएगा ।'' और फिर यह सारा दल राजमंदिर में विशाल स्वागत करते हुए कहता है–--विजेता सैल्यूकस का मैं स्वागत करता हूँ ।''

''किन्तु मैं तो पराजित हूँ सम्राट् ! मैं तो संधि के लिए आया हूँ ।

''हाँ हाँ कहिए...'' चंद्रगुप्त ने कहा ।

''आर्य साम्राज्य के महामंत्री चाणक्य के दर्शन करने ।''

पीछे से आते हुए आचार्य ने कहा, ''मैं आपका अभिनंदन करता हूँ यवन सम्राट् । हम भारतीय शुभकामना करते हैं आपके वैभव और विकास की । आप सदैव अपने लक्ष्य में सफल होवें ।''

''मुझे तो आपका आशीर्वाद चाहिए ।'' यह कहते हुए सम्राट् सैल्यूकस आचार्य के चरणों में झुक जाता है ''मैं तो संधिपत्र....''

''तुम दोनों सम्राट् हो सैल्युकस !'' और आचार्य उसे कदमों पर झुके होते ही उठाते हुए कहते हैं–''तुम दोनों के बीच संधि का अजस्र स्रोत है, उसे प्रवाहित करो सैल्यूकस ! मैं कार्नेलिया को भारत की साम्राज्ञी बनाने के लिए उसका हाथ चंद्रगुप्त के लिए मांगता हूँ ।''

''मैं अभिभूत हुआ आचार्य !'' सैल्यूकस अपनी पुत्री का हाथ चंद्रगुप्त के हाथों में देते हुए एक बार चंद्रगुप्त और कार्नेलिया को एक साथ गले लगा लेता है । पुष्पों के हार पहने कार्नेलिया और चंद्रगुप्त ने भी आचार्य के चरण छुए ।

आज दूसरी बार चाणक्य की आँखों में आँसू आ गए थे, दोनों को आशीष देते हुए आचार्य अपने उत्तरदायित्व से पूरी तरह उपराम हो गए थे । अब वे सेनापति मौर्य को साथ लिए धीरे-धीरे अपनी कुटिया की ओर बढ़ रहे थे । उनका मस्तक दोपहर के सूर्य समान प्रदीप्त हो रहा था । आचार्य चाणक्य चले जा रहे थे, राजधर्म से ब्राह्मण धर्म की दिशा में । मगध पर आज भी उनके ऋणों की पताका फहरा रही थी । और आचार्य चाणक्य ने अपना शिखाबंधन किया चूंकि उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी ।

चाणक्य ने विधिवत् अपने हाथ से चंद्रगुप्त मौर्य को सम्राट् पद पर अभिषिक्त करके सन्तोषपूर्वक अपनी चोटी बाँधते हुए कहा–

कोई साधन न होने पर भी मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई, राष्ट्र विदेशी प्रभाव से मुक्त हुआ और देश में एक-छत्र साम्राज्य की स्थापना हुई। किस प्रकार? केवल एकनिष्ठ कर्त्तव्यशीलता, आत्मविश्वास, अविरत प्रयत्न तथा सत्य के पक्ष में रहने के बल पर। चन्द्रगुप्त! जब तक तुम में न्याय, सत्य, आत्मविश्वास, साहस एवं उद्योग के गुण सुरक्षित रहेंगे, तुम और तुम्हारी सन्तानें इस पद पर बनी रहेगी। और यदि तुम और तुम्हारी सन्तानें इन गुणों से विरत हुई तो पतन का उत्तरदायित्व देश काल अथवा परिस्थितियों पर नहीं, तुम पर और तुम्हारी संतानों पर होगा।

आत्म साधना, साम्राज्य, नालंदा विश्वविद्यालय, अर्थशास्त्र सृजन, बहुमुखी गतिविधियों का संचालन करते हुए चाणक्य ने अपनी हिमालय जैसी ऋषि परम्परा की अक्षुण्ण ही रखा। वे लोभ-मोह से सर्वथा दूर रहे। उनका रहन-सहन, आहार-विहार वैसा ही रहा जैसा तपस्वियों का होता है। प्रचुर साधन उनके हाथ में थे परन्तु उन्होंने अपने लिए उनमें से नहीं के बराबर ही उपयोग किया। लोक-मंगल में निरत जन-सेवकों का निर्वाह न्यूनतम स्तर का ही होना चाहिए इस आदर्श को उन्होंने सदा ध्यान में रखा। अपनी झोंपड़ी में वे नित्य पैदल चलकर जाते थे और वहीं अपना साधन नित्य कर्म सम्पन्न करते थे। उनके निजी रहन-सहन का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

गोबर से लिपी हुई, कच्ची फूँस की झोंपड़ी, कुशाओं का गड्डा उपला तोड़ने का पत्थर, हवन समिधाएं, यही उस महा ब्राह्मण की सम्पत्ति थी।

12. साहित्यसृजन

आचार्य चाणक्य बहुत बड़े साहित्कार भी थे। उन्होंने अपने जीवन में अनेक ग्रंथों की रचना की थी परन्तु मुख्य ग्रंथ निम्नलिखित हैं–

1. चाणक्य नीति – यह आप की विश्व विख्यात कृति है। मैंने अपने जीवन में अनेक विद्वानों के नीतिग्रंथों का अध्ययन किया है। परन्तु चाणक्यनीति मुझे सर्वप्रिय लगी है जैसे–

लोभमूलानि पापानि, रस-मूलाश्च व्याधयः।

स्नेह मूलानि दुःखानि, त्रीणि त्यक्तवा सुखी भवेत।।

पापों का मूल लोभ है, रोगों का मूल स्वाद है। दुःखों का मूल आसक्ति है– इन तीनों का परित्याग करकें ही व्यक्ति सुखी हो सकता है।

उद्यमस्य प्रसादेन, दृश्यंते विविधाः कलाः।

कातरा एव जल्पन्ति, यद् भाव्यं तद् भविष्यति।।

पुरुषार्थ की कृपा से अनेक प्रकार की कलाएँ उद्भूत होती हैं। जो होना है वही होगा ऐसा कायर ही कहते फिरते हैं।

2. चाणक्य सूत्र :

1. **सुखस्य मूलं धर्मः।**
   धर्म ही सुख देने वाला है।
2. **धर्मस्य मूलमर्थः।**
   धन से ही धर्म संभव है।

3. अर्थशास्त्र : इस शास्त्र में 15 अधिकरण, 150 अध्याय, 180 प्रकरण और 6000 श्लोक हैं। यह विस्तृत ज्ञान देने वाला है और इसमें अर्थशास्त्रों का तत्व इस प्रकार वर्णित है कि सरलता से समझ में आ जाता है और फिर थोड़ी भी शंका शेष नहीं रहती है।

अंततः इतना ही कहना काफी होगा कि आचार्य चाणक्य एक प्रकांड पंडित, दूरदर्शी, सुदृढ़, संकल्पव्यक्ति सफल अखंड ब्रह्मचारी राजनीतिज्ञ, राष्ट्रप्रेमी आदि गुणों से ओतप्रोत थे। वस्तुतः वे महामानव थे जिनका नाम भारतीय इतिहास में सदा अमर रहेगा।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)